

UNIVERSAL
LIBRARY

OU₁186691

UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. 301.350954 Accession No. G.H. 2861
G 68 H

Author गौड़, रामदास

Title हमारे गांवों की कहानी १९६१

This book should be returned on or before the date
last marked below.

सत्साहित्य-प्रकाशन

ह मा रे
गांवों की कहानी

लेखक

स्व० रामदास गौड़

१९६१

सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली

प्रकाशक

मार्तण्ड उपाध्याय,
मंत्री, सस्ता साहित्य मंडल,
नई दिल्ली

सातवी बार, १९६१

मूल्य
दो रुपये

मुद्रक
प्रतापसिंह लुणिया
जॉब प्रिंटिंग प्रेस, अजमेर

प्रकाशकीय

भारत के सर्वांगीण विकास की कोई भी योजना तभी सफल हो सकती है जब उसका मूलाधार गांव होंगे। इसके लिए गांवों की वर्तमान समस्याओं तथा उनको पृष्ठ-भूमि को समझना आवश्यक है।

‘हमारे गांवों की कहानी’ भारत के गांवों के उत्कर्ष-अपकर्ष का एक ऐसा ऐतिहासिक क्रम प्रस्तुत करती है, जो वर्तमान परिस्थितियों को समझने में सहायक होगा। किस-किस काल में हमारे गांवों की व्यवस्था-प्रणाली किस-किस प्रकार की रही, इसकी विशद जानकारी पुस्तक में दे दी गई है, जिससे पाठक हर काल के गांवों का तुलनात्मक अध्ययन करके उनकी अच्छाई-बुराईयों को समझ सकें। यह जानकारी वर्तमान गांवों के नव-निर्माण की दिशा में विशेष सहायक हो सकती है।

पुस्तक का यह सातवां संस्करण इसकी लोकप्रियता का स्पष्ट प्रमाण है। आशा है, गांवों के नव-निर्माण में रुचि रखनेवाले सभी लोग इस पुस्तक के प्रसार में आगे भी, सहयोग देते रहेंगे।

—मंत्री

भूमिका

आधुनिक ऐतिहासिक विद्वान् विशेषतः भारतवर्ष के इतिहास के संबंध में मुख्य धारणाओं के साथ अपने सभी विचारों को सुसंगत करने की कोशिश करते हैं। उनकी एक धारणा यह है कि पाश्चात्य इतिहास की तरह यहां का इतिहास भी विकास के अनुरूप होना चाहिए। दूसरी धारणा यह है कि मानव-सभ्यता का इतिहास इतना पुराना नहीं है, जितना हिन्दू बताते हैं। तीसरी धारणा यह है कि आर्य लोग कहीं विदेश से भारत में किसी भूतकाल में आये थे। पहली धारणा में यह दुर्बलता है कि विकास-विज्ञान उत्तरोत्तर वर्धमान शास्त्र है। उसके आधार पर स्थिर इतिहास की कोई इमारत सभी देशों और कालों के लिए सुभीते से नहीं खड़ी की जा सकती। दूसरी धारणा भी पहली के ही आधार पर है और विज्ञान गत पचास बरसों के भीतर सृष्टि और सभ्यता के भूतकाल की सीमा को बराबर बढ़ाता आया है, अतः इस धारणा में भी स्थिरता का अभाव है। तीसरी धारणा कुछ विशेष कल्पनाओं के आधार पर है, जिनपर भी विद्वानों का मतभेद है। हमारा प्राचीन साहित्य हमारे निकट उसका तनिक भी समर्थन नहीं करता। सुतरां मैं तीसरी धारणा को निराधार मानता हूं।

पाठकों के सामने भारतीय गांवों के इतिहास के जो ये पृष्ठ मैं रख रहा हूं, उनमें मैंने उपर्युक्त तीनों धारणाओं की जानबूझकर उपेक्षा की है। साधारण पाठक भी इस भगड़े में नहीं पड़ना चाहेंगे कि सतयुग पांच हजार बरस पहले हुआ या बीस लाख बरस पहले, या यह कि सतयुग में, यदि वह सृष्टि काल के पास था, मनुष्य को कपड़े बनाने की कला आनी चाहिए या नहीं, अथवा यह कि यहां के गांवों को आर्यों ने बाहर से आकर बसाया या वे भारत में पहले से ही बसे हुए थे। हमारे इतिहास का आधार हमारा साहित्य है और उसमें भी यह विषय सर्वसम्मत है कि वेदों से अधिक पुराना संसार में कोई साहित्य नहीं है। पुराने-से-पुराने साहित्य के आधार

पर प्राचीनतम गांवों का इतिहास अवलंबित है, फिर चाहे उसे पांच हजार बरस हुए हों, चाहे पांच लाख । हमारे गांवों की जवसे आबादी है, हम उसी समय से अपने वर्णन का आरम्भ करते हैं । फिर चाहे वे गांव इस भूतल पर किसी देश के क्यों न हों, वे गांव हमारे ही थे, किसी और जाति के नहीं ।

इस कहानी के लिखने का उद्देश्य यह है कि हम अच्छी तरह देखें कि हमारी उन्नति कहां तक हुई थी और आज हमारा पतन किस हद तक हुआ है । अपनी वर्तमान स्थिति को अच्छी तरह समझने के लिए भूतकाल की स्थिति का जानना आवश्यक है, क्योंकि वर्तमानकाल भूतकाल का पुत्र है । साथ ही भावी उन्नति और उत्थान के लिए ठीक मार्ग निश्चय करने में भूतकाल का इतिहास बड़ा सहायक होता है । आज हमारे गांवों के लिए जीवन और मरण का प्रश्न खड़ा है । इसे हल करने के लिए भी हमें अपने पूर्वकाल का सिंहावलोकन करना आवश्यक है । ग्राम-संगठन की समस्या देश के सामने है । उसकी पूर्ति में इस कहानी से सहायता मिल सकती है । इस कहानी की हमारे ग्राम-संगठन के काम में कुछ भी उपयोगिता सिद्ध हुई तो, मैंने इस पोथी के सकलन में जो कुछ परिश्रम किया है, उसे सार्थक समझूंगा ।

काशी

— रामदास गौड़

विषय-सूची

१. सतजुगी गांव	७
२. सतजुग के बाद के गांव	२०
३. कलजुग का प्रवेश	३१
४. चाणक्य के समय के गांव	४२
५. प्राचीनकाल का अंत	५३
६. पूर्व माध्यमिक काल	६४
७. परमाध्यमिक काल	७१
८. कंपनी का कठोर राज्य	८३
९. विक्टोरिया के राज्य से वर्तमानकाल तक	८९
१०. किसानों की बरबादी	११३
११. दरिद्रता के कड़े फल	१२८
१२. और देशों से भारत की खेती का मुकाबिला	१४९



: १ :

सतजुगी गांव

१. गांव किसे कहते हैं ?

तथा शूद्रजनप्राया सुसमृद्धकृषीवला ।

श्रेत्रोपयोग-भूमध्ये वसति ग्रामसंज्ञिका ॥

—मार्कण्डेय पुराण ।

गांव किसे कहते हैं ? आज भारत देश में कोई ऐसी बात पूछ बैठे तो लोग उसे पागल कहेंगे । बड़े-से-बड़े शहर में रहनेवाला बड़ा आदमी भी जिसे किसी बात की कमी नहीं है, कम-से-कम हवा खाने के लिए गांव की ओर जरूर जाता है । इसलिए कोई ऐसा नहीं है जो गांव के लिए पूछे कि किसे कहते हैं । तो भी भारी-भारी पंडितों ने यह बताया है कि गांव किसे कहते हैं ? गांव उसी बस्ती का नाम है जिसमें मेहनत-मजूरी करनेवाले, और सब जरूरत की वस्तुओं से रजे-पुंजे खेतिहर रहते हों और जिसके चारों ओर खेती करने के लायक धरती हो । ऊपर लिखे श्लोक के लिखने वाले ने गांव के रूप का एक नक्शा खींचा है । भारत खेतों का देश है । अन्न और कपड़ा इन्हीं खेतों से मिलते हैं । संसार की अच्छी-से-अच्छी चीजें, भोग-विलास की सामग्री तक लगभग सभी इन्हीं खेतों की उपज है । इन्हीं खेतों की बदौलत किसान सुखी और निश्चित रह सकता है । इन खेतों पर मेहनत-मजूरी खूब जी लगाकर की जाती है, तभी सब मनचाहा सामान मिल सकता है । इसलिए गांव में मजूर और किसान इन दोनों का होना जरूरी है । मजूर जब अपने खेत में काम करता होता है, तब किसान कहलाता है । किसान जब मजूरी लेकर दूसरे का काम करता है, तब मजूर कहलाता है । गांव के रहने वाले सभी मजूर और किसान हैं । एक कुम्हार जब औरों को

बरतन बनाकर देता है, एक तेली जब औरों के लिए तेल पेलता है, एक कोरी जब औरों के लिए कपड़े बुनता है और एक चमार जब औरों के लिए जूते बनाता है, तब वह मजूर का काम करता है। परन्तु जब कुम्हार, तेली, कोरी चमार, बनिया, कायस्थ, क्षत्रिय, ब्राह्मण अपने लिए अपने खेती-बारी का काम करते हैं तब सब-के-सब किसान हैं। गांवों में आपस के और नाते भी होते हैं, तब मजूर और किसान का आपस का नाता सबमें बराबर है। आदमी सभी बराबर है। सब अपना-अपना काम करते हैं।

आजकल भी हम गांवों में देखते हैं तो थोड़ी-बहुत ऐसी ही बात पाई जाती है। पंडितों ने जो गांव का नक्शा खींचा है वह बिल्कुल मिट नहीं गया है। आज भी हम गांवों में जाकर देखते हैं तो मजूरों और किसानों को पाते हैं। हाँ, उन्हें सुखी नहीं पाते। बहुत से हड्डी की ठठरी देख पड़ते हैं। बहुत-से रोगी, आलसी और बेकार भी हैं। आधे से अधिक ऐसे हैं जिन्हें दिन-रात में एक बार भी भरपेट रूखी रोटी नहीं मिलती। खेतों में अनाज पैदा होता है, पर वह न जाने कहां चला जाता है। वे अन्न उपजाते हैं, पर औरों के लिए। वे चोटी का पसीना एड़ी तक बहाते हैं और काम के पीछे मर मिटते हैं, पर औरों के लिए। धूप, आधी ओले, पाला, बरफ सबका कष्ट भेलकर सेवा करते हैं, पर उनकी सेवा करते हैं जो उन्हें लात मारते हैं; उपकार के बदले उल्टे अपकार करते हैं। उनकी यह घोर दरिद्रता—जिसको देखकर रोयें खड़े हो जाते हैं, जी दहल जाता है—उन अपकारियों पर कोई प्रभाव नहीं डालती। वे कहते हैं कि ये तो सदा के दरिद्री हैं, पशु हैं और हमारे सुख के लिए बनाये गए हैं। उनकी कल्पनाओं में इन गांवों के सुख के दिन आते ही नहीं। आजकल की पच्छांही कल पुरजों की सभ्यता से जिनकी आंखें चौंधिया गई हैं; पच्छांही की माया से जिनकी बुद्धि चकरा गई है, वे सोचते हैं कि मजूरों और किसानों की दशा पहले कभी अच्छी रही हो, ऐसा नहीं हो सकता और आज तो इनकी दशा सुधारने के लिए बड़े-बड़े कल-कारखाने खुलने चाहिए। क्या इनके विचार ठीक हैं? क्या मजूर और किसान पहले अधिक सुखी नहीं थे? क्या पहले भी आज की तरह खेती से

इनका गुजारा नहीं होता था ? इन बातों पर विचार करने के लिए हमें प्राचीनकाल की सैर करनी चाहिए ।

२. सतजुग का आरम्भ

सतजुग की चर्चा हमने बहुत सुनी है, पर हम नहीं जानते कि सतजुग किसे कहते हैं । पंडित लोग बताते हैं कि वह समय बहुत-बहुत दिन हुए, बीत गया । लाखों बरस की बात है । अनेक पढ़े-लिखे कहते हैं कि कई लाख नहीं तो कई हजार बरस तो जरूर बीत गए हैं । चाहे जितना समय बीता हो वे लोग जिसे वेद का युग कहते हैं उसीको सतजुग भी कहा जाता है । पंडितों का यह भी कहना है कि भारत के लोग आर्य हैं, और आर्य का सीधा-साधा अर्थ किसान है । * आर्य किसानों को कहते हैं, इस बात की गवाही वेदों से भी मिलती है । † राजा पृथु की कथा, सीताजी का जन्म, अकाल पड़ जाने पर

* रमेशचन्द्र दत्त रचित अंग्रेजी के 'प्राचीन भारत में सभ्यता का इतिहास' पृष्ठ ३५

यवं वृकेणाश्विना वपन्तेषं दुहन्ता मनुषाय दस्त्रा

अभि दस्यु बकुरेणा धमन्तोरुज्योतिश्चक्रयुरार्याय । ऋक् १।११७।२१
हे अश्विनीकुमारो ! हल से जुते खेत में यवादि धान्य बुबाते हुए तथा मेघ बरसाते हुए खेत के नाश करनेवाले दस्यु को बकुर (वज्र) से मारते हुए तुम दोनों ने आर्य वैश्य के लिए विस्तीर्ण सूर्य नाम की ज्योति बनाई है ।

ओमासश्चर्षणी धृतो विश्वे देवास आगत । दाश्वांसो दाशुषः सुतम् ॥१॥

ऋक् १ । ३ । ७

उतः नः सुभगां अरिर्वोचियुर्वस्म कृष्टयः । स्यामेदिन्द्रस्य शर्मणि ॥२॥

ऋक् १ । ४ । ६

चर्षणि और कृष्टि—ये दोनों शब्द मनुष्य वाचक हैं । हे देवताओ ! धनादि देनेवाले आप लोग हवि देनेवाले यजमान के घर पर पधारो ॥१॥

हे शत्रु-नाशक इंद्र ! तेरी कृपा से शत्रु भी हमें अच्छा बतलावें, फिर हम इंद्र से प्राप्त सुख में रहें ॥२॥

बड़े-बड़े ऋषियों की तपस्या, यज्ञ-पूजा आदि कथाओं से पुराण भरे हैं। कृष्ण और हलधर किसानों ही के नाम हैं। खेती, गोपालन और व्यापार वैश्यों का खास काम बताया गया है। किसान बिना गऊ पाले खेती का काम चला नहीं सकता और खेती में उपजा हुआ अन्न जब गांव के खर्च से बचेगा तो उसे अपने गांव से बाहर बेचना ही पड़ेगा। इसलिए जो काम वैश्य जाति का बताया गया है वह किसान का ही काम है। वेदों में 'विश' आर्य प्रजा के लिए आया है। इसी से वैश्य भी किसान ही को कहते हैं।*

हमारी दुनिया सतयुग से ही शुरू है और बोली का शुरू भी सतयुग में ही मानना पड़ेगा। इसलिए हम सहज में ही समझ सकते हैं कि सतयुग में खेती का काम बहुत होता रहा होगा। साधारण लोग खेती या मजूरी ही करते रहे होंगे। प्रोफेसर संतोषकुमार दास अपनी अंग्रेजी की 'प्राचीन भारत का संपत्तिक इतिहास' नाम की पुस्तक में पृष्ठ ६ पर लिखते हैं कि "धरती के चार विभाग होते थे:— (१) वास्तु (२) कृषियोग्य भूमि (३) गोचर भूमि (४) जंगल में। वास्तुभूमि का मालिक किसान होता था।.....वास्तव में जितने युद्ध हुआ करते थे, गऊ या खेतों के हरण के लिए हुआ करते थे। जीत का भाग जीतनेवालों में बंट जाता था।" लोग गांव में अपने परिवार के साथ रहते थे और खेतों के मालिक की हैसियत से खेती करते थे। बाप मर जाता था तब बेटों में जायदाद बँटती थी। गोचर भूमि और जंगल पर सबका अधिकार था। वेदों में इन

* पुरुष सूक्त के सिवाय संहिताओं में और कहीं 'वैश्य' शब्द नहीं आया। 'विश' शब्द का बराबर प्रयोग है जिसका अर्थ 'साधारण प्रजा' लिया गया है। इसलिए यह सहज ही अनुमान किया जा सकता है कि 'वैश्य' साधारण प्रजा के अधिकांश समुदाय का नाम होगा। यह बात बिल्कुल स्पष्ट है कि देश के भरपूर-पोषण के लिए सबसे अधिक संख्या किसानों ही की होनी चाहिए। ब्राह्मणों और क्षत्रियों की आवश्यकतानुसार अत्यन्त कम, शूद्रों अर्थात् मजूरों की संख्या लगभग किसानों अथवा वैश्यों के बराबर होगी।

अधिकारों के दायभाग की भी चर्चा है। इस पोथी में यह भी लिखा है कि “प्रोफेसर कीथ (Keith) और दूसरे विद्वान् कहते हैं कि इस जुग में शहर होते ही न थे। शहर का होना सिद्ध करनेके लिए जो मंत्र कहा जाता है, उसका अर्थ यह विद्वान् यह लगाते हैं कि शरदश्रुतु में बाढ़ आने पर इन मिट्टी के पुरों में किसान लोग शरण लेते थे। यह ‘पुर’ एक प्रकार के बांध का नाम है।”* जो हो; तो इसमें सदेह नहीं मालूम होता कि शहर थे भी, तो बहुत कम रहे होंगे। गांवों की ही गिनती सबसे ज्यादा होगी।

मंत्रों से यह भी पता चलता है कि हल से खेत जोते जाते थे और जौ, गेहूं, धान, मूंग आदि अनाज और गन्ने की पैदावार बहुतायत में होती थी। † लोग गाय, बैल, घोड़े, भेड़, बकरी रखते थे और चराने को ले जाया करते थे। समय-समय पर खेती के संबंध में नई उपज पर, फसल खड़ी होने पर, कटने पर, बोने के समय इत्यादि अवसरों पर किसान यज्ञ करता था और बड़ी अच्छी दक्षिणा देता था। ब्राह्मण के दाहिनी ओर गाय होती थी, जो यज्ञ के अन्त में उसे दी जाती थी। दक्षिणा नाम इसी से पडा है। आजकल

* शतमशमन्मयोनां पुरामिन्द्रो व्यास्यत् । दिवोदासाय दाशुषे ॥

ऋग्वेद मं० ४ सू० ३० मं० २०

तथा प्रो० संतोषकुमार दास की पुस्तक पृष्ठ १०-११

इंद्र ने दिवोदास नामक यजमान को पत्थर के बने हुए सौ ‘पुरों’ को दिया।

। युवो रथस्थ परि चक्रमीयत ईर्मान्यद्वामिषण्यति ।

अस्मां अच्छा सुमतिर्वा शुमस्पती आ धेनुरिवधावतु ॥

ऋग्वेद मं० ८ सू० २२ मं० ४

हे अश्विनीकुमारो ! तुम्हारे रथ का एक चक्र द्युलोक की परिक्रमा करता है, दूसरा तुम दोनों के समीप से जाता है। हे उदकरक्षक ! कुमारो ! तुम्हारी अच्छी बुद्धि हमारी तरफ धनादि देने के लिए उसी प्रकार आवे, जिस प्रकार नव-प्रसूता गौ दूध पिलाने के लिए बच्चे के पास जाती है।

पुरोहित जो पद-पद पर गऊ-दान मांगता है, वह इस पुराने रिवाज के अनुसार ही है। किसान कितना धनवान होता था, इसका पता उसकी दक्षिणा से लगता है। किसान की आमदनी खेती से, पशुओं से और बागों और जंगलों की उपज से अधिक होती थी। पर केवल अनाज के ही कारोबार में लोग फंसे नहीं रहते थे। वेदों में सूत, रेशम, ऊन और छाल आदि के बने हुए बारीक और उत्तम कपड़ों का अनेक प्रसंगों में वर्णन हुआ है। इसलिए यह बात बिल्कुल जाहिर है कि किसान लोगों में कताई और बुनाई का काम बहुत फैला हुआ था। बचे हुए समय में ये लोग कताई, बुनाई की कला के अभ्यास में लगे रहते थे।* ये उनका रंग उड़ा देते थे और कपड़ों को सुन्दर-सुन्दर रंगों में रंगते थे। सिले हुए कपड़े और अच्छे प्रकार की पोशाक पहनते थे। दूध, घी, तेल, मसाले और औषधियां काम में लाते थे; शहद इकट्ठा करते थे; शक्कर बनाते थे। इसमें तनिक भी संदेह नहीं है कि उनके यहां तेल और गन्ने पेलने के कोल्हू थे, खंडसालें थी, करघे थे, चरखे थे, खेत की सिंचाई के लिए कुए थे, जिनसे रहंट से पानी निकाला जाता था।

* नाहं तन्तु विजानाम्योतुं न यं वयन्ति समरेऽतमानाः ।

कस्य स्वित् पुत्र इह वक्तवानि परो वदात्यवरेण पित्रा ॥

मं० ६। सू० ६। स० २

न मैं तंतु को और न ओतु को ही जानता हूं और न इन दोनों से बनने वाले कपड़े को जानता हूं। किस का सुपुत्र इन वक्तव्य-व्याख्यातव्य ज्ञापनीय बातों को सूर्य से नीचे लोक में रहने वाला पुरुष बतला सकता है, अर्थात् कोई नहीं। यदि कोई इन बातों का पता चला सकता है तो सिर्फ वैश्वानर से ही। यह वैश्वानर की स्तुति है।

स इत्तन्तुं स विजानात्योतुं स वक्तवान्यृतुथा वदाति ।

य ईं चिकेतदमृतस्य गोपा अवश्चरन् परो अन्येन पश्यन् ॥

मं० ६। सू० ६। मं० ३

इस प्रकार तंतु आदि का जानना अत्यन्त कठिन है, परन्तु यदि कोई

नाले और नहरो मे भी सिचाई होती थी । कभी-कभी मूखा भी पड़ जाता था और लोग अकाल का भी मुकाबला करते थे । उनके वर्तन ताबे, पीतल, फल कांस के होते थे । अमीरों के घर सोने और चांदी के वर्तन बरते जाते थे । वे गाड़ी, रथ और नाव भी रखते थे और जूते पहनते थे । अच्छे अच्छे कच्चे-पक्के मकान बनाते थे, चित्रकारी करते थे, मूर्तिया बनाते थे, बच्चों को पढ़ाते-लिखाते थे और अच्छे-अच्छे व्यंजन बनाकर खाते थे ।

जानता है तो वह वैश्वानर ही जानता है--और वही व्याख्या करता है, जो कि सूर्य, अग्नि आदि रूपों से द्युलोक और भूलोकादि में स्थित है ।

सं मा तपन्त्यभितः सपत्नीरिव पर्शवः ।

मूषो न शिश्ना व्यदन्ति माध्यः स्तोतारं ते शतक्रतो वित्तं मे अस्य रोदसी

१ । १०५ । ८

मुझे कूप की भीते तकलीफ देती हैं जिस प्रकार सौते एक पति को दुःख देती हैं तथा जुलाहे को चूहे जो कि आ-आ करके तंतु काट जाते हैं, जिन पर मांड लगा रहता है । हे इंद्र ! तेरे स्तोता मुझको आंधियां बहुत ही सताती है ।

इंद्र ब्रह्म क्रियमाणा जुषस्व या ते शविष्ठ नव्या अकर्म ।

वस्त्रेव भद्रा मुकृता वसूय रथं न धीरः स्वपा अतक्षम् ॥

५ । २६ । १५

हे बलवत्तर इंद्र ! हमने तेरी नवीन-नवीन स्तुति तैयार की है जिस प्रकार अच्छे-अच्छे वस्त्रों से रथ तैयार किया जाता है, आप उन्हें स्वीकार कर हमें धनवान् बनाइये ।

उचथ्ये वपुषि यः स्वराडुत वायो घृतस्नाः ।

अश्वेषितं रजेषितं शुनेषितं प्राज्म तद्विबं नु तत् ॥ ८ । ४६ । २८

इस स्तुत्य शरीर में जो स्वराट् (अन्त) विद्यमान है वह अश्व, गध, कुत्ते इन सबको अभीष्ट है, वह अन्न हमें दे । और वह अन्न सामने ढेरी रूप में विद्यमान है ।

इन सब बातों से जाहिर होता है कि गांव में किसान ही रहते थे और वे खेती के सिवा और भी काम किया करते थे। ब्राह्मण पुरोहिती करता था

गावो न यूथमुपयन्ति वध्रय उप मा यन्ति वध्रयः । ८ । ४६।३७

मुझे गौएं तथा वधिये बैल प्राप्त हो रहे हैं।

अधयच्चार थे गणे शतमुष्ट्रां अचिक्रवत् ।

अध शिवत्रेषु विंशतिशता ।

८ । ४६ । ३१

जंगलों में भुङ्ग रूप में चरनेवाले ऊंट हमें प्राप्त हों। और श्वेत रंगवाली गौओं के सौ बीसे प्राप्त हों। (इस प्रकार के इस मंडल में बहुत मंत्र हैं)

आर्घाषणायः पतिः शुचायाश्च शुचस्य च ।

वासो वायोऽवीना मावासांसि ममृजत् ॥ ऋक् १० । २६ । ६

अपने लिये पाली गई बकरी और बकरो का पालन सूर्य हमारे लिये मेड़ों की ऊन के बने हुए वस्त्र (जिनको धोबियों ने धोया है) प्रकाश और उष्णता से शुद्ध करता है।

त्वमग्ने प्रयत दक्षिणं नरं वम्व स्यूतं परि पासि विश्वतः ।

स्वादु क्षप्पा यो वसतौ स्योनकृज्जीवयाजं यजते सोपमा दिवः ॥

ऋक् १ । ३१ । १५

हे अग्ने ! तू प्रयतदक्षिण पुरुष की उस प्रकार रक्षा करता है जैसे ताने, बाने, तुरी, वेमा आदि से बनाया हुआ कवच उससे ढके हुए मनुष्य की रक्षा करता है। जो सुखकारी यजमान जीवयजन सहित यज्ञ को करता है वह स्वर्ग की उपमा होता है। अर्थात् जिस प्रकार स्वर्ग प्रत्येक को सुख देता है उसी ही तरह वह भी ऋत्विगादिकों को सुख देने वाला कहलाने से स्वर्ग है।

सयह्वयोऽवनीर्गोष्वर्वा जुहोति प्रधन्यासु सस्त्रिः ।

अपावो यत्र युज्यासोऽरथा द्रोण्यश्वासईरतेघृतंवाः ॥ ऋ १०।६६।४

वह घोड़ा (इंड़े) मेघों में जाता है, पृथ्वी पर चलता है। और वह बिना पंर के जहां चलते हैं, वहां, जहां रथ से नहीं चलते वहां तथा नदियों में

और खेती भी करता था । क्षत्रिय रक्षा करता था और खेती करता था । बनिया व्यापार भी करता और खेती भी करता था । मजूर मजूरी भी करता था और खेती भी । कुम्हार, तेली, भड़भूजे, चमार, कोरी, ठठरे, लुहार, बढई, धीवर, ग्वाले, धुनिये, सुनार, धोबी, रगरेज, दर्जी, माली, आदि सभी कारवार के लोग गांवों में रहते थे और अपने कारोवार के साथ-साथ खेती जरूर करते थे । श्रम-विभाग के अनुसार जातियाँ बन गई थीं । ये जातियाँ धीरे-धीरे वशानुगत हो गई ।

भी चलता है ।

समु प्रयन्ति धीतयः सर्गासोऽवतां इव ।

ऋतु नः सोम जीवसे विवो मदे धारया चमसां इव विवक्षसे ॥

ऋक् १०।२५।४

हे सोम । हमारी स्तुतियाँ रहट की डोलचियों के समान इकट्ठी ही चलती हैं जिस प्रकार वे कूप में इकट्ठी जाती हैं । तुम भी हमारे लिए यज्ञ को उस प्रकार धारण करो जिस प्रकार तुम्हारे लिए अध्वर्यु चमस को धारण करता है ।

वार्व येषां राया युक्तैषां हिरण्ययो ।

नेमधिता न पौस्या धृथेव विष्टांता ॥ ऋक् १०।६३।१३

जिनके धन के कारण हमारी स्तुति बार-बार हिरण्यालंकार के समान चित्त को प्रसन्न कर रही हैं । जिस प्रकार पुरुषों की सेना संग्राम में और रहट की घटिका यन्त्रमाला कूप में देखने पर चित्त को प्रसन्न करती है ।

प्रोणीताश्वान् हितं जयाथ स्वस्तिवाहं रथमित्कृणुध्वम् ।

द्रोणाहावमवतमश्मचक्रमंसत्रकोशं सिचता नृपाणाम् ॥ १०।१०१। ७

हे ऋत्विजो ! तुम घोड़ों को घासवाना आदि खिला-पिलाकर मोटा-ताजा रखो और फिर खेत वगैरा बोओ । और चयन नामक रथ को स्वास्ति-वाहक बनाओ । बैलों के पीने के लिए चौबच्चे लकड़ी, पत्थर आदि के गहरे बनाओ तथा ऐसे हौज भी बनाओ जिनसे मनुष्य जल पी सकें ।

सतजुग में गांवों की इस व्यवस्था को देखकर यह कौन कह सकता है कि आजकल की तरह उस समय भी मजूर और किसान भूखों मरते थे। उस समय की चर्चा में भुक्खड़ों का और दुर्भिक्ष पीड़ितों का वर्णन नहीं है। अधिकांश मनुष्य अपने-अपने अधिकार पर बने रहते थे। दूसरों का हक छीनने की चाल कम थी। धर्म की बुद्धि अधिक थी। हरेक गांव अपने लिए स्वतन्त्र था। पाप-बुद्धि कम होने से चोर, डाकू या और सत्वापहारियों का डर न था। यह सतजुग का आरम्भ था।

३. राजकर और लगान की रीति

सतजुग के आरम्भ में बहुत काल तक किसी ऊपरी हकूमत या शासन की जरूरत न पड़ी होगी, क्योंकि प्रजा में अपने-अपने कर्तव्य पूरा करने का भाव था और धर्म-बुद्धि थी। पराये धन का लोभ-लालच प्रायः तभी अधिक होता है, जब अपने पास किसी वस्तु की कमी होती है। मनुष्यों की बस्ती धनी न थी, सारी बस्ती पड़ी थी। इसलिए लोग जरूरत से ज्यादा धनी और सुखी थे। यह भी कहना अनुचित न होगा, कि इंद्रियों के सुख की

सीरायुञ्जन्ति कवयो युगान् वि तन्वते पृथक् ।

धीरा देवेषु सुमनया ॥

ऋक् १०।१०।१४

मेधावी पुरुष हल जोड़ (त) ते हैं, जूओं को अलग-अलग बनाते हैं, जिससे हमें सुख प्राप्त हो ।

इस प्रकार इस मंडल में तथा अन्य मंडलों में भी इस प्रकार ऋग्वेद में वास्तु विद्या का विस्तृत वर्णन मिलता है ।

यस्ते वासः परिधानं यां नीवि कृण्वे त्वम् ।

शिवं ते तन्वे तत् कृष्मः संस्पर्शब्रूक्षामस्तु ते ॥ अथर्व० ८।२।१६

हे बालक ! तेरा जो ओढ़ने व पहिनने का वस्त्र है यह तेरे लिए सुखकारी हो—और हम उस वस्त्र को मुलायम बनाते हैं । इत्यादि ।

इसी प्रकार १०।१०।१३ में ऋग्वेद में सातों अनाजों के बोने की भी हमें आज्ञा मिलती है । इत्यादि

सामग्री न ज्यादा तैयार हुई थी, और न उसका उनको ज्ञान था। अज्ञान के कारण भी लोभ उनको नहीं सताता था। ईसाइयों के सतजुग में भी आदम ने जबतक ज्ञान के पेड़ का फल नहीं खाया था, तबतक उसे मालूम न था कि मैं नंगा हूँ और नंगा रहना बुरी बात है। ज्ञान का फल खाते ही उसे इंजीर के पेड़ को नंगा करके अपना तन ढकना पड़ा। बाग में ज्ञान और जीवन के पेड़ थे, जिनका फल खाना उसके लिए वर्जित था। शैतान की दम-पट्टी में आकर उससे यह भारी भूल हो गई। मालूम होता है कि ज्यों-ज्यों आबादी बढ़ती गई त्यों-त्यों तैयार की हुई धरती मनुष्य के लिए घटती गई। लोभ-रूपी शैतान ने आदमी को बहकाया। वह परमात्मा की आज्ञा को भूल गया।* उसे यह ज्ञान हुआ कि मेरे पास संपत्ति कम है और पड़ोसी के पास ज्यादा। या अगर मेरे पास पड़ोसी से ज्यादा संपत्ति हो जाती तो मैं अधिक सुखी हो जाता। लोभ ने दूसरे की चीज हर लेने की ओर उसके मन को झुकाया। धीरे-धीरे धर्म-भाव का लोप होने लगा, स्वार्थ और पाप ने अपनी जड़ जमाई। कोई राजा या हाकिम न था जो बल के प्रयोग में बाधा डालता।

“राखें सोई जेहि ते बनै, जेहि बल होइ सो लेइ।”

यही नियम चलने लगा। “जिसकी लाठी उसकी भैंस” वाली बात चरितार्थ होने लगी, किसी तरह का राज न होने से उस समय प्रजा एक दूसरे का उसी तरह नाश करने लगी थी, जैसे पानी में बड़ी-बड़ी मछलियां छोटी-छोटी मछलियों को खाने लगती हैं। इस तरह बलवानों और निर्बल का झगड़ा जब समाज में उथल-पुथल मचाने लगा, उस समय जिन लोगों में थोड़ी धर्म-बुद्धि थी, वे समाज की इस गड़बड़ी को मिटाने के लिए लड़ने

*ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किंच जगत्यां जगत् । तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः

मा गृधः कस्यस्विद्धनम् । यजु० ४०।१।

यह सब कुछ, जो कुछ कि चलायमान संसार है, वह परमात्मा के रहने की जगह है, परमात्मा सबमें व्यापक है। उसके प्रसाद की तरह जो कुछ तुम्हें मिले, उसका भोग करो, किसी और के धन का लालच मत करो।

वालों को समझाने-बुझाने लगे और यह कोशिश करने लगे कि गई हुई धर्म-बुद्धि लौट आये, इसमें वे सफल न हुए। भले लोगों ने इन पशुबल वालों से बचने के लिए यह निश्चय किया कि जो लोग वचन के शूर हैं, लवार हैं, सबपर जबरदस्ती किया करते हैं, पराई स्त्री और पराये धन को हर लेते हैं, उन सबका हम लोग त्याग करेगे। असहयोग इस तरह सतजुग में ही आरंभ हुआ था।

जान पड़ता है, कि असहयोग बहुत काल तक नहीं चला। जो जबरदस्त थे, किसी का दबाव नहीं मानते थे, व्यभिचारी थे और दूसरों का धन हर लेते थे, उनकी गिनती शायद बहुत बढ़ गई थी, और इतनी बढ़ गई थी कि उनमें थोड़ी गिनती वाले धर्मात्माओं के त्याग का उनपर कोई असर न पड़ा। अच्छों ने प्रजापति से शिकायत की। इसपर पितामह ब्रह्मा ने एक बहुत बड़े धर्मशास्त्र की रचना की, जो क्रम से बहुत छोटे रूप में धर्म-भीरु मनुष्यों को मिला। इसका नाम दंड-नीति रखा गया, परन्तु इतने से काम न चला। दंड कौन दे? तब शासन करनेवाले की जरूरत हुई। लाचार

† अराजकाः प्रजाः पूर्वं विनेशुरिति नः श्रुतम् ।

महाभारत, शान्तिपर्व ।

वाक्शूरो बंडपरुषो यश्च स्यात्पारजायिकः ।

यः परस्वमथावद्यात्याज्या नस्तादृशा इति ।

तास्तथा समयं कृत्वा समये नावतस्थिरे ॥ म० भा० शां० प०

बिभेमि कर्मणः पापाद्वाज्यं हि भृशदुस्तरम् ।

विशेषतो मनुष्येषु मिथ्यावृत्तेषु नित्यदा ।

तमबुवन्प्रजा मा भैः कर्तुंनेनो गमिष्यति ।

पशूनामधिपंचाशद्विरण्यस्य तथैव च ॥

धान्यस्य दशमं भागं दास्यामः कोषवर्द्धनम् ।

यं च धर्मं चरिष्यन्ति प्रजा राजा सुरक्षिताः ॥

चतुर्थं त्वस्य धर्मस्य त्वत्संस्थं वै भविष्यति ।

लोग प्रजापति के पास गये, परन्तु प्रजापति अधिकार के लोभ थे। उन्होंने लोगों को मनु के पास भेजा। मनु बोले, राजा का काम बड़ा कठिन है और पाप से भरा है। जो लोग भूठ के व्यवहार में लगे रहते हैं उनपर और खासकर भूठे मनुष्यों पर शासन करने से मैं डरता हूँ। मनुष्य समाज के सामने यह बड़ी कठिनाई आ खड़ी हुई। उसने मनु को प्रसन्न करने के लिए उन्हें यह वचन दिये—“आप पाप के लिए न डरिये, पाप करनेवाला उसके फल को भुगत लेगा। आपका कोष बढ़ाने के लिए हम पशु और सोने का पचासवाँ और अनाज का दसवाँ भाग देते रहेंगे; आप से रक्षा पाकर हम लोग जो भले कर्म करेंगे उसका चौथाई फल आपको मिलेगा। उस पुण्य से सुखी होकर आप हमारी रक्षा उसी तरह कीजिए जैसे इन्द्र देवताओं की रक्षा करता है।”

जान पड़ता है भगवान् मनु ने राज-भार लेने पर जो बन्दोबस्त किया उसका आधार यही इकरारनाम था। बन्दोबस्त करने के बदले और रक्षा-कराई के वेतन में मनुष्यों को भूमि पर कर देना पड़ता है। मनु का धर्मराज था। जिन लोगों ने जंगल काटकर मेहनत करके जितनी धरती को खेत बनाया था, उतनी धरती उनकी संपत्ति हो गई। बहुतों के पास ज़रूरत से ज्यादा धरती थी। बहुतों ने यह चाहा कि हमें धरती को बनाने की मेहनत न करनी पड़े और खेत मिल जायें। बहुतों के पास इतने खेत थे कि वे सबको काम में नहीं ला सकते थे। इस तरह लेने और देनेवाले दोनों मौजूद हो गये। खेत कुछ काल के लिए या सदा के लिए किराये पर दिये जाने लगे। इसी का नाम लगान पड़ा। राजा का महसूल जमीन के मालिक को देना पड़ता था। लगान धरती का मालिक लेता था। इस तरह धरती का मालिक खेतीवाले से जो लगान लेता था वह इनना होता था कि अनाज का दसवाँ भाग राजा को देने के बाद भी उसे कुछ आय बच जाती थी। खेती करनेवाले को छठे भाग तक लगान दे डालना पड़ता था। कुछ भी हो, धरती राजा की नहीं थी, प्रजा की थी। राजा रक्षा करता था। जो भूमिकर उसे मिलता था, वह राजा की तनख्वाह थी। शुरु-नीति में भी ऐसा लिखा है।

तेन धर्मेण महता सुख लब्धेन भावितः ।

पाह्यस्मान् सर्वतो राजन् देवानिव शतक्रतुः ॥

जिन राजाओं ने धर्म के तत्व को ठीक तरह पर न समझा और अपने को धरती और प्रजा का मालिक समझकर मनमानी करने लगे, दीनों और दगिद्रों पर अन्याय करने लगे, तब प्रजा का नाश होने लगा और उन राजाओं का अपने ही कर्तब से विनाश हो गया । राजा वेन अपनी जबरदस्तियों के कारण ऋषियों के हाथ मारा गया । राजा पृथु गद्दी पर बैठाया गया । प्रजा की उचित रक्षा करने और धरती से अन्न-धन निकालकर प्रजा को सुखी रखने से पृथु का राज ऐसा मशहूर हो गया कि उसीमे सारी धरती का नाम पृथ्वी पड़ गया ।

दंड-नीति को चलानेवाला राजा होने लगा । वह प्रजापति की ही जगह था । इसलिए संसार की प्रजा उसी की प्रजा हो गई । वह भूप या भूपाल या नरपाल कहलाया; क्योंकि वह धरती और किसान की रक्षा करता था । उसे तनखाह में राज-कर मिलता था जिसे वह प्रजा की धरो-हर समझता था और रक्षा के काम में लगाता था । उसे अपने लिए बहुत थोड़े अंग की जरूरत होती थी । जमींदारी, रयतवारी, लगान राजा राज-प्रबंध सबकुछ तभी से चल पड़े ।

: २ :

सतजुग के बाद के गांव

१. त्रेता और द्वापर

सतजुग के बाद के समय को विद्वान् लोग त्रेता और द्वापर युग कहते हैं । उसी को प्रायः पच्छांही रीति से विचार करनेवाले ब्राह्मण युग कहते हैं । इस युग में भी जितनी बातें सतजुग में होती थीं उतनी सभी बातें पाई जाती हैं । युग बदल गया, बहुत काल बीत गया, लोग वेदों को भूल गये उनका अर्थ समझना अत्यन्त कठिन हो गया । परन्तु लोग धातुओं का

निकालना न भूल, सोने-चाँदी के सिक्के बनाना न भूल, अनाज उपजाना, पशु पालन और व्यापार करना बराबर पहले की भाँति जारी था। भगवान् रामचन्द्रजी के राज में, जिसे लिखनेवाले तो १०-११ हजार बरस तक का बतलाते हैं; पर जो अवश्य बहुत काल तक रहा होगा, कभी अकाल नहीं पड़ा था और जब एक ब्राह्मण का लड़का जवान ही मर गया तो वह उसकी लाश भगवान् रामचन्द्रजी के दरवार में लाया और राजसिंहासन से विचार कराना चाहा कि लड़का क्यों मरा ? क्योंकि उस समय यही समझा जाता था कि अल्पमृत्यु अकालमृत्यु और दुर्भिक्ष या प्रजा की दरिद्रता ये सब कष्ट जो प्रजा को कभी पहुँचता है तो इसका दोषी या अपराधी राजा होता है और यह बात तो बिल्कुल साफ ही है कि जब सब तरह से रक्षा करना राजा का ही काम था, तब प्रजा में रोग दरिद्रता, अल्पमृत्यु तो तभी होगी जब उसकी रक्षा पूरी तौर पर न होगी और राजा अपने धर्म का पालन न करेगा और कर वसूल करता जायगा। इससे यह पता चलता है कि राम-राज्य में प्रजा सब तरह से सुखी थी। अर्थात् किसान सुखी, समृद्ध और एक दूसरे की सहायता करनेवाले थे। सतयुग की तरह अब भी खेती में बहुत बड़ा और भारी हल काम में आता था। उसका फल बहुत तेज और पैना होता था और मूठ चिकना होता था। एक-एक हल में चौबीस-चौबीस तक बैल जोते जाते थे। खेत की जैसी उत्तम प्रकार की सिंचाई होती थी उन्नी तरह खाद भी देना जरूरी था, और भाँति-भाँति के अनाज उपजाये जाते थे। आज जितने अनाज उपजाये जाते हैं, प्रायः सभी उस समय भी होते थे। *

*लांगलं पवीरवत् सुशीमं सोमसत्सह ।

उदिद वपतु गामविं प्रस्थावद् रथवाहनं पीवरी च प्रफर्व्यम् ॥

अथर्व ३।१७।३

तेज फलवाला हल, सोम यज्ञ के साधन सब अश्वों का उत्पादक होने से सुखकर है। वह बैल, भेड़ आदि को गमन-समर्थ, मोटा-ताजा रथादि-वाहन-समर्थ बनावे।

रामायण से पता चलता है कि खेती भारी कला समझी जाती थी, क्योंकि उस समय वेदों के साथ-साथ शिक्षा का मुख्य विषय खेती और व्यापार था। श्री रामचन्द्रजी भरतजी से पूछते हैं कि “तुम किसानों और गोपालों के साथ अच्छा बर्ताव रखते हो या नहीं ?” खेती इतने जोरों से होती थी कि अयोध्याजी किसानों से भरी हुई थी। धान की उपज बहुतायत से दिखाई गई है। राजा इस बात का गर्व करता है कि उसका राज्य अन्न-धन से भरा हुआ है। गांवों के वर्णन में यह कहा गया है कि वे चारों ओर जुती हुई धरती से घिरे हैं।

हर गांव में ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य और शुद्र और हर पेशेवाले, जिनकी जीवन में सबसे ज्यादा जरूरत पड़ती है, जैसे नाई, धोबी, दर्जी, कहार,

शुनासीरे ह स्म मे जुषेथाम्*

यद्विवि चक्रथुः पयस्तेनेमामुर्पासितम् ॥ अथर्व ३।१७।७

हे शुनासीर देवो ! जो मेरे खेत में पैदा हुआ है उसे सेवन करो। और जो आकाश में जल है उससे इस खेत को सींचो।

“चतुरौदुम्बरो भवत्यौदुम्बरः लुव औदुम्बरश्चमस औदुम्बर इष्मा आदुम्बर्या उपमन्थिन्यौ। दशग्रम्याणि धान्यानि भवन्ति — ब्रीहियवाः तिल-माषा अणुप्रियंगवो गोधूमाश्च मसूराश्च खल्वाश्च खलकुलाश्चेति। बृहदारण्यकोपनिषत् अ० ६। ब्रा. ३। म. १३।

“दस तरह के ग्रामीण अन्न होते हैं — धान, (चावल) जौ, तिल, उड़द, अण, (सांवा-कंगनी) मसूर, खल्व, कुल्था, गेहूं।”

ब्रीहयश्चमे मे यवाश्चमे माषाश्च मे तिलाश्च मुद्गाश्च मे खल्वाश्च मे प्रियंगवश्च मेऽणवश्च मे श्यामाकाश्च मे नीवाराश्च मे गोधूमाश्च मे मसूराश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम्। १८।१२।

इस मन्त्र का अर्थ स्पष्ट है।

*अयोध्याकांड सर्ग ६८; बालकांड सर्ग ५; अयोध्याकांड, ३।१४; अयोध्याकांड सर्ग ६२।

चमार, बड़ई, लुहार, सुनार, ग्वाले, गड़रिये आदि होते थे । गांव का सरदार या मुखिया भी कोई होता था और पंचायतों से हर गांव अपना स्वाधीन बन्दोबस्त किया करता था । रक्षा के लिए राजा को उसका उचित कर उगाहकर मुखिया दिया करता था और उसके बदले राजा बाहरी बैरियों से गांवों की रक्षा करता था, फिर चाहे वह बैरी मनुष्य हो, कृमि, कीट, पतंग हो, रोग, दोष, अकाल, सूखा, पानी की बाढ़, आग, टिड्डी आदि कुछ भी हो । राजा दसवे भाग से लेकर छठे भाग तक कर लेकर भी राष्ट्र की रक्षा नहीं कर सकता था तो उसे प्रजा का चौथाई पाप लगता था ।*

किसानों को त्रेता और द्वापर में खेती की आजकल की-सी साधारण विपत्तियां भेलनी पड़ती थी । चूहे, घूस, छछूदरे बीज खा जाती थीं, चिड़ियां आदि अंकुरों को नष्ट कर देते थे । अत्यन्त सूखा या बहुत पानी से फसलें बरबाद हो जाती थीं । अच्छी फसलों के लिए उस समय भी भांति-भांति के उपाय करने पड़ते थे । परन्तु खेती को जब कभी हानि पहुंचने की संभावना होती राजा रक्षा का उपाय करने का जिम्मेदार था । और जब कभी दुर्भिक्ष पड़ता था, राजा के ही पाप से पड़ता था । राजा रोमपाद के राज में उन्हीं के पाप से काल पड़ा बताया जाता है । राजा का कर्त्तव्य था कि दुर्भिक्ष निवारण के सारे उपाय जाने और करे ।

*आदायबलिषड्भागं यो राष्ट्रं नाभिरक्षति ।

प्रतिगृह्णाति तत्पापं चतुर्थशेन भूमिपः ॥

—महाभारत

† “एतस्मिन्नेव काले तु रोमपादः प्रतापवान् ॥

अंगेषु प्रथितो राजा भविष्यति महाबलः ।

तस्य व्यतिक्रमाद्राज्ञो भविष्यति सुदारुणा ।

अनावृष्टिः सुघोरा वं सर्वलोकभयावहा ॥ इत्यादि ।

व्यतिक्रमात्तुराजोचितधर्मविलोपनादिति तिलकव्याख्या ।

बालकांड, सर्ग १; अयोध्याकांड, सर्ग १००; बालकांड, सर्ग ६।७

इस युग में भी गौशालाएं बहुत उत्तम प्रकार से रखी जाती थीं। इस युग में घोष पल्लियां* अर्थात् ग्वालों के गांव-के-गांव थे। ग्वाले बहुत सुखी और धनी थे और दूध, मक्खन, घी आदि के लिए प्रसिद्ध थे। द्वापर के अंत में नंदगांव, गोकुल, वरसाना और वृन्दावन तक गोपालों के गांव थे। कंस जैसे अत्याचारी और लुटेरे के राज में भी मथुरा के पास इन गांवों में दूध, दही की नदी बहती थी। नद और वृषभान जैसे बड़े अमीर ग्वाले रहते थे। इस समय में भी कुम्हार, लुहार, ग्वाले, ज्योतिषी, बढ़ई, धीवर, नाई, घोड़ी, बिनकार, सुराकार (कलवार), इपुकार (तीर बनानेवाले), चमड़ा सिझानेवाले, घोड़े के रोजगारी, चित्रकार, पत्थर गढ़नेवाले, मूर्ति बनानेवाले, रथ बनानेवाले, टोकरी बनानेवाले, रस्सी बनानेवाले, रंगरेज, सुनार, धातु निकालनेवाले नियारिये, सूखी मछली बेचनेवाले, सुईकार, जौहरी, अस्त्रकार, नकली दांत बनानेवाले, दांत के बंध, इतर बेचनेवाले, माली, थवई, जूते बनानेवाले, धनुष बनानेवाले, औषध बनानेवाले, और रासायनिक आदि की चर्चा इस समय के ग्रंथों में आई है। †

कपड़े की बिनाई की कला भी अपनी हृद को पहुंच चुकी थी। सोने और चांदी के काम के कपड़े, जरी के काम के पीताम्बर आदि भी बनते थे।

*तैत्तिरीय ब्राह्मण कांड १। प्र० ४। अ० ६। ख० २। से मालूम होता है कि गायें तीन बार चरने को भेजी जाती थीं और उनकी अच्छी सेवा होती थी। तथाहि —

“विषु कालेषु पशवः नृणभक्षणार्थं संचरन्ति।

तत्तन्मध्याकाले तु रोमन्थं कुर्वन्तो वर्तन्ते। इति।” अर्थ स्पष्ट है।

† शुक्ल यजुर्वेद अध्याय १६ और ३०, रामायण अयोध्या कांड सर्ग १००, बालकांड, सर्ग ५। हम वेद के मंत्रों का उदाहरण नहीं देते क्योंकि सारा अध्याय ही उदाहरणीय है। अतः पाठक किसी भी मंत्र को उठाकर देख सकते हैं। तथा बालकांड का सारा सर्ग ही यहां पठन-योग्य है।

जिनमें जगह-जगह पर रत्न और नगीने टंके हुए थे । ब्राह्मण लोग कौशेय वस्त्र पहनते थे और तपस्वी छाल के बने कपड़े पहनते थे । रंगाई भी अच्छी होती थी । रूई के मैल को उड़ाने के लिए इस युग में एक यंत्र काम में आता था । ऊन के रेशम के बड़े अच्छे-अच्छे प्रकार के महीन, रंगीन और चमकीले कपड़े बनते और बरते जाते थे ।*

ऐसा जान पड़ता है कि पेशे वालों की पचायतें भी उस समय अवश्य थी । जो पंचायत का सभापति होता 'श्रेष्ठ'† कहलाता था ।

खेती के काम में स्त्रियों का भी भाग था । खेती का काम इतना पवित्र समझा जाता था कि उसके लिए यज्ञ करने में स्त्री-पुरुष दोनों शामिल होते थे । जहां पुरुष अन्न उपजाता था वहां किसान की स्त्री अन्न के काम को

*“कौशेयानि च वस्त्राणि यावत्तुष्यति वै द्विजः” इत्यादि

भूषणानि महार्हाणि वस्वस्त्राणि यानि च” । अयोध्याकांड ३०।४४

“सुदरकांड का नवां सर्ग ही द्रष्टव्य है । पाठक देख सकते हैं ।

“स हर्षोत्फुल्लनयनां पाण्डुरक्षौमवासिनीम्” इत्यादि अयोध्याकांड ७।७

“जातरूपमयैर्मुह्यैरंगदैः कुण्डलैः शुभैः ।

सहेमसूत्रैर्मणिभिः केयूरैर्वलयैरपि । इत्यादि अयोध्याकांड २३।५

“वन्तकांचनचित्रांगैर्बद्धैश्च वरासनैः ।

महार्हास्तरणोपेतैरुपपन्नं महाधनैः । इत्यादि सुदरकांड १०।२

“रौक्मेषु च विशालेषु भाजने व यमक्षितान्

बदशं कपिशार्दूलो मयूरान् कुक्कुटांस्तथा । सुदरकांड ११।१५

“तां रत्नवसनोपेतां गोष्ठागारावतंसिकाम् ।

यन्त्रागारस्तनीमृद्धां प्रमदामिव भूषिताम् । सुदरकांड ३।१८

† अथर्ववेद; १।६।३; शतपथ ब्राह्मण; १३।७।१।१; ऐतरेय ब्राह्मण,

१३।३।३; ४।२५।८-९।; ७।१८।८; छांदोग्य उपनिषद्; ५।२।६;

कौषीतकी उपनिषद् ४।२०, २।६, ४।१५, बृहदारण्यकोपनिषद् १।४।१२।

येनेन्द्राय समभर; पर्याप्त्युत्तमेन ब्राह्मणा जातवेदः ।

पूरा करती थी। उसके स्वादिष्ट भोजन तैयार करती थी। अन्नपूर्णा देवी का आदर्श पालन करती थी।

भारत के जंगलों से लाक्षा आदि रंगने की सामग्री किसान लोग इकट्ठी करके काम में लाते थे और इसका व्यापार इतना बढ़ा-चढ़ा था कि भारत के बाहर के देशों में भी रंग की सामग्री विकने को जाया करती थी।

गांव में अन्न, पशु आदि से बदल कर और जरूरत की चीजें लेने की चाल तब भी थी जैसी कि आज अन्न से बदल कर लेने की चाल बाकी है। बदलने की यह रीति उस समय इसलिए प्रचलित न थी कि उस समय सिक्कों का चलन न था। सिक्कों का तो उस समय सतजुग से प्रचार चला आया था। हिरण्यषिड निष्क, शतमान, सुवर्ण इत्यादि सोने के सिक्के थे। कृष्णाल एक छोटा सिक्का था, जिसमें एक रत्ती सोना होता था।* बात यह है कि उस समय गोएं सस्ती थीं और पालने का खर्च बहुत नहीं था। गौओं की सतान सहज ही बढ़ती थी और उत्तम-मे-उत्तम पोषक भोजन घी, दूध, दही कौड़ियों के मोल था। अनाज देश में ही खर्च होता था। रेल की क्रांचियों में लद कर करांची के बंदरगाह में बाहर नहीं जाता था। इस तरह किसान लोग धनी सुखी थे। व्यवहार-व्यापार में सच्ची

तेन त्वमग्ने इह वर्धयेमं सजातानां श्रेष्ठ्यं आधेह्ये नम् ॥ अथर्व. १।६।३

हे अग्ने! जिस मंत्र से तू देवताओं को उत्तम अन्न प्राप्त कराता है उसी मंत्र से इस पुरुष को 'श्रेष्ठ' पद का अधिकारी बना।

"श्रेष्ठो राजाधिपतिः समाज्यैष्ठ्यं श्रेष्ठ्यं राज्यमाधिपत्यं गमयत्वह-मेवेदं सर्वमसानीति"। छांदोग्य-अध्याय ५ खंड ६०। मंत्र का अर्थ स्पष्ट है।

"श्रेष्ठ्यं स्वाराज्यं पयेंति" ४।२०, 'भूतानि श्रेष्ठ्याय युज्यन्ते" २।६ "इदं श्रेष्ठ्यया यम्यते" ४।१५ कौषीतका ब्रह्मणोपनिषद् ॥ अर्थ स्पष्ट है।

"श्रेयांसं हिंसित्वेति" १।४।१२ बृहदारण्यकोपनिषद्।

*शतपथ ब्राह्मण ५।४।३, २४, २६; ५।५।१६; १२।७।२।१३। १३।२।३।२; तैत्तिरीय ब्राह्मण १।७।६२ और १२।७।७ और १७।६।२,

अदला-बदली से काम लेते थे; उस समय धन और संपत्ति का सच्चा अर्थ समझा जाता था; पर जो भारी-भारी व्यापारी या माट-महाजन थे वे सोने, चाँदी, मोती, मूंगे और रत्नों को इकट्ठा करते थे। राजा और राज कर्मचारी भी अमीर होते थे, जिनके पास सोने चाँदी और रत्नों के सामान बहुत होते थे। परन्तु ऐसे लोग भारी मर्यादा में न थे। भारी संख्या किसानों की ही थी।

सोना, चाँदी, रत्न, टक, बग, सीसा, लोहा, ताँबा, रथ, घोड़े, गाय, पशु, नाव, घर, उपजाऊ खेत, दास-दासी इत्यादि इस युग में धन, संपत्ति की वस्तुएँ समझी जाती थी। जहाँ कहीं ब्राह्मणों के दान पाने की चर्चा है वहाँ से पता लगता है कि उस समय धन कितना था और किस तरह बंट जाता था। राजा जनक ने साधारण दान में एक-एक बार हजार-हजार गौएँ, बीस-बीस हजार अश्वफियाँ विद्वान् ब्राह्मणों को दी हैं। एक जगह वर्णन है कि एक भक्त ने ८५ हजार सफेद घोड़े, दस हजार हाथी और अस्सी हजार गहनों से सजी दासियाँ यज्ञ करनेवाले ब्राह्मणों को दी।*

इसी युग के सिलसिले में महाभारत का समय भी आता है। यह द्वापर का अंत और कलियुग के आरंभ में पड़ता है। महाभारत के समय में हिन्दुस्तान के जो राज्य थे उन सबकी राज्य-व्यवस्थाओं में खेती, व्यापार और उद्योग के बढ़ाने की ओर सरकार की पूरी दृष्टि थी। इस विषय के लिए एक अलग राजविभाग था। सभा पर्व में नारद ने और बातों के अलावा राजा युधिष्ठिर से यह भी पूछा है कि रोजगार में सब लोगों के अच्छी तरह से लग जाने पर लोगों का मुख बढ़ता है। इसलिए तेरे राज में रोजगार वाले विभाग में अच्छे लोग रखे गये हैं न? इस अवसर पर

* छान्दोग्यपनिषद् ४।१।७; ५।१।१।७।१६; ७।२।४। शतपथ ब्राह्मण ३।४८; तैत्तिरीय उपनिषद् १।५।१२; बृहदारण्यकोपनिषद् ३।३।११; शतपथ ब्राह्मण २।६।३।६; ४।१।११; ४।३।४।६; तैत्तिरीय ब्राह्मण ३।१२।५, ११—१२

रोजगार के अर्थ में वार्ता शब्द आया है। वार्ता या वृत्ति में, वैश्यों या किसानों के सभी धंधे समझे जाते हैं। श्रीमद्भगवद्गीता में जो महाभारत का ही एक अंश है, भगवान् कृष्ण ने कहा है कि खेती, वनिज और गोपालन ये तीनों धंधे स्वभाव से ही वैश्यों के लिए हैं। खेती में वह सब कारबार शामिल है जो खेती की उपज से संबंध रखते हैं और गौरक्षा में पशुपालन का सारा कारबार शामिल है। इसी तरह वनिज में सब तरह का लेन-देन और साहूकारी शामिल है, इन सब का नाम उस समय वार्ता था और आजकल अर्थशास्त्र है।*

२. द्वापर का अन्त

महाभारत काल में व्यवहार और उद्योग-धंधों पर लिखते हुए श्री० चिन्तामणि विनायक वैद्य ने अपने अपूर्व ग्रंथ 'महाभारत-मीमांसा' में खेती और बगीचे के संबंध में जो कुछ लिखा है वह हिन्दी में ही है इसलिए यहाँ हम उसे ज्यों-का-त्यों दे देते हैं—

“महाभारत-काल में “आजकल की तरह लोगों का मुख्य धंधा खेती ही था और आजकल इस धंधे का जितना उत्कर्ष हो चुका है, कम-से-कम इतना तो महाभारत-काल में भी हो चुका था। आजकल जितने प्रकार के अनाज उत्पन्न किये जाते हैं वे सब उस समय भी उत्पन्न किये जाते थे। खेती की रीति आजकल की तरह थी। वर्षा के अभाव के समय बड़े-बड़े तालाब बनाकर लोगों को पानी देना राजा का आवश्यक काम समझा जाता था। नारद ने युधिष्ठिर से प्रश्न किया है कि तेरे राज्य में खेती वर्षा पर तो अवलंबित नहीं है न ? तूने अपने राज्य में योग्य स्थानों पर तालाब बनाये हैं

*कश्चित्स्वनुष्ठिता तात वार्ता ते साधुभिर्जनैः ।

वार्तायं संश्रिते नूनं लोकोयं सुखमेधते ॥ —महाभारत, सभापर्व
उस समय में विद्या के चार विभाग थे। त्रयी, वृंढनीति, वार्ता और आन्वीक्षिकी। त्रयी, वेद को कहते थे। वृंढनीति, धर्मशास्त्र था। आन्वीक्षिकी, मोक्ष-शास्त्र या बेदान्त था और वार्ता, अर्थशास्त्र था।

न ?” यह बतलाने की आवश्यकता नहीं कि पानी दिये हुए खेतों की फसल विशेष महत्व की होती थी। उस जमाने में ऊख, नील (नील) और अन्य वनस्पतियों के रंग की पैदावार भी सींचे हुए खेतों में की जाती थी। (बाहर के इतिहासों से अनुमान होता है कि उस समय अफीमों की उत्पत्ति और खेती नहीं होती रही होगी)। उस समय बड़े-बड़े पेड़ों के बगीचे लगाने की ओर विशेष प्रवृत्ति थी और खासकर ऐसे बगीचों में आम के पेड़ लगाये जाते थे। जान पड़ता है कि उस समय थोड़े अर्थात् पांच वर्षों के समय में आम्र वृक्ष में फल लगा लेने की कला मालूम थी। यह उदाहरण एक स्थान पर द्रोण पर्व में दिया गया है। ‘फल लगे हुए पांच वर्ष के आम के बगीचे को जैसे भग्न करें।’* इस उपमा से आजकल के छोटे-छोटे कलमी आम के बगीचों की कल्पना होती है। यह स्वाभाविक बात है कि महाभारत में खेती के संबंध में थोड़ा ही उल्लेख हुआ है। इसके आधार पर जो बातें मालूम हो सकती हैं वे ऊपर दी गई हैं। × × × किसानों को सरकार की ओर से बीज मिलता था और चार महीनों की जीविका के लिए अनाज उसे मिलता था, जिसे आवश्यकता होती थी। किसानों को सरकार अथवा साहूकार से जो ऋण दिया जाता था, उसका ऋण फी सेंकड़ा एक रुपये से अधिक नहीं होता था। खेती के बाद दूसरा महत्व का धंधा गोरक्षा का था। जंगलों में गाय चराने के खुले साधन रहने के कारण यह धंधा खूब चलता था। कारण लोगों को बैलों की बड़ी आवश्यकता होती थी, क्योंकि उस जमाने में माल लाने लेजाने का सब काम बैलों से होता था। गाय के दूध-दही की भी बड़ी आवश्यकता रहती थी। इसके सिवा गाय के संबंध में पूज्यबुद्धि रहने के कारण सब लोग उन्हें अपने घर में भी अवश्य पालते थे। जब विराट राजा के पास सहदेव तंतिपाल नामक ग्वाला बनकर गया था, तब उसने अपने ज्ञान का वर्णन किया था।† उससे मालूम होता है कि महाभारत काल में

* चूतारामो यथा भग्नः पंचवर्षः फलोपगः ।

+ क्षिप्रं च गावो बहुला भवन्ति । न तामु रोगो भवतीह कश्चन ॥

जानवरों के बारे में बहुत कुछ ज्ञान रहा होगा। अजाविक अर्थात् बकरो-भेड़ों का भी बड़ा प्रतिपालन होता था। 'जाबालि' शब्द 'अजापाल' से बना। उस समय हाथी और घोड़ों के संबंध की विद्या को भी लोग अच्छी तरह जानते थे। जब नकुल विराट राजा के पास ग्रंथिक नाम का चाबुक-सवार बनकर गया था तब उसने अपने ज्ञान का वर्णन किया था।* उसने कहा, "मैं घोड़ों का लक्षण, उन्हें सिखलाना, बुरे घोड़ों का दोष दूर करना और रोगी घोड़ों की बवा करना जानता हूं।" महाभारत में अश्व-शास्त्र अर्थात् शालिहोत्र का उल्लेख है। अश्व और गज के सम्बन्ध में महाभारत काल में कोई ग्रन्थ अवश्य रहा होगा। नारद का प्रश्न है कि "तू गजसूत्र, अश्वसूत्र, रथसूत्र इत्यादि का अभ्यास करता है न?" मालूम होता है कि प्राचीन काल में बैल, घोड़े और हाथी के संबंध में बहुत अभ्यास हो चुका था और उनकी रोग चिकित्सा का भी ज्ञान बहुत बढ़ा-चढ़ा था।†

महाभारत-मीमांसा में ऊपर की लिखी बातों से यह जाहिर है कि द्वापर के अंत और कलियुग के आरंभ वाले समय में गांव के रहनेवाले किसान सुखी और धनी थे। उनकी दशा आजकल की-सी न थी। उनके पास अन्न-धन की बहुतायत थी। वे अपना उपजाया खाते और अपना

*अश्वानां प्रकृति वेदमि विनयं चापि सर्वशः ।

कुष्ठानां प्रतिमर्त्ति च कृत्स्नं च विचिकित्सितम् ।

†त्रिःप्रसृतमदः शुष्नी षष्टिवर्षी मतंगराट् ॥४॥

म. भा. सभाषर्ष, अ० १५१

साठवें वर्ष में हाथी का पूर्ण विकास अर्थात् यौवन होता है और उस समय उसके तीन स्थानों से मूत्र टपकता है। कानों के पीछे, गंडस्थलों से और गुह्य देश में। महाभारत के जमाने की यह जानकारी महत्वपूर्ण है। इससे विदित होता है कि उस समय हाथी के संबंध का ज्ञान कितना पूर्ण था !

बनाया पहनते थे। बकरा, भेड़, आग और घरती बेचने की चीजें नहीं थीं।* जान पड़ता है कि उस समय तक खेतों के रेहन और बय करने की प्रथा नहीं चली थी। इस रीति का आरम्भ चन्द्रगुप्त के समय से जान पड़ता है। उस समय भी यह अधिकार सब को नहीं मिला था। मुसलमानों के समय में रेहन और बय करने की रीति जोरों से चल पड़ी और मंत्र १८४४ में तो कम्पनी-सरकार ने नियम बना दिया कि कानूनगो के यहाँ रजिस्ट्री करके जमींदार अपनी जमीन रेहन या बय करा सकता है।

: ३ :

कलजुग का प्रवेश

१. बौद्धकाल

कलजुग के आरम्भ के हजार-डेढ़-हजार बरस तक वही दशा समझनी चाहिए जो महाभारत के आधार पर मीमांसा में दी गई है। आज से लगभग ढाई हजार बरस पहले भगवान बुद्ध का समय था। गाँव के सम्बन्ध में बुद्ध-मत के ग्रंथों में से बहुत-सी बातें निकाली जा सकती हैं। उनसे यह पता चलता है कि भारत का समाज उस काल में भी देहाती ही था। किसान लोग अपने-अपने खेत के मालिक थे और गाँव के किसानों की एक जाति-सी बनी हुई थी। अलगायी हुई भारी-भारी रियासतें, जमींदारियाँ या ताल्लुके न थे। एक जातक में लिखा है कि जब राजा विदेह ने संसार छोड़ कर संन्यास ले लिया तो उन्होंने सात योजनाओं की अपनी राजधानी मिथिला छोड़ी और सोलह हजार गाँव का अपना राज छोड़ा। इससे पता चलता है कि सोलह हजार गाँव वाले राज्य के भीतर मिथिला नाम का एक ही शहर था। उस समय गाँवों के मुकाबले शहरों की संख्या इतनी थोड़ी थी कि

*अजोऽग्निर्वरुणो मेघः सूर्योऽश्वः पृथिवी विराट् ।

धेनुर्यज्ञश्च सौमश्च न विकेयाः कथंचन ।

—महाभारत

अगर हम एक लाख गावों के पीछे सात शहरों का औसत मान लें और यह भी मान लें कि आजकल की तरह सारे भारत में सात लाख से ज्यादा गांव नहीं थे तो सारे भारत में उस समय शहरों की कुछ गिनती पचास से अधिक नहीं ठहरती। शहर की लम्बाई-चौड़ाई भी इतनी ज्यादा वर्णन की गई है कि उसमें न केवल लम्बे-चौड़े मुहल्ले शामिल होंगे बल्कि आस-पास के गांव भी जरूर मिल गये होंगे। आज भी हमारे शहरों में बड़े-बड़े गांव और कस्बे मिल ही जाते हैं। जातकों में गांव के रहनेवालों की संख्या तीस परिवारों से लेकर एक हजार परिवारों तक थी और एक परिवार की गिनती में दादा, दादी, मां, बाप, चाचा, चाची, बेटे, बेटी, बहुएं और पोते, पोती, नाती, नातिनी, जितने रसोई के भीतर भोजन करते थे, सब शामिल थे। जिस तरह आज मिले-जुले परिवार गांव में रहते हैं उसी तरह पहले भी रहा करते थे; और जैसे आज यह नहीं कहा जा सकता कि हम इतनी ही बड़ी बस्ती को गांव कहेंगे उसी तरह तब गांव की कोई नयी-तुली-परिभाषा न थी।*

जब कभी कोई महत्व के सार्वजनिक काम पड़ते थे तो गांव के सब लोग मिलकर उसमें उचित भाग लेने का निश्चय कर लेते थे। गांव का एक मुखिया होता था जिसे 'भोजक' कहते थे। भोजक को कुछ कर और दंड मिल जाया करता था। गांव के सब रहने वाले मिलकर सलाह करते थे। उसमें भोजक भी शामिल होता था। एक जातक में लिखा है कि बोधिसत्त्व और गांव वाले मिलकर रम्बे और फावड़े लेकर फिरे। गलियों और सड़कों में जहां कहीं पत्थर या रोड़े थे रम्बों से निकाल कर किनारे लगाने गये और जो बे-मौके राह में पड़ते थे, जिनसे रथों और गाड़ियों के चलने में रुकावट होती थी, उन्हें फरसों से काट डाला, ऊची-नीची, ऊबड़-खाबड़ जगहों को बराबर कर डाला उन्होंने सड़कें ठीक कर डालीं, पानी के तालाब

*जातक ३।३६५; ४।३३०; विनयपिटक, कुल्ल ५, अध्याय ५।१२; जातक १।१०६

बना डाले और एक बड़ा दालान तैयार कर डाला; परन्तु उसकी छत के पास सामान न था। वह एक देवी के पास था, जिससे मोल लेने को उनके पास धन न था। पर उनके काम में शरीक होने को वह राजी होगई और उन्हें वह सब सामान मिल गया। इस कथा से यह प्रकट है कि उस समय के धार्मिक नेता भी गांव का सुधार कराने के लिए गाववालों के साथ मिलकर काम करने में शामिल हो जाते थे। साथ ही उस समय गाववालों के मन में ऐसा भाव भी था कि अपने खेत में मोटे-से मोटा काम करने में किसी तरह की हेठी न थी; पर राजा के यहां जाकर वेगार करना नीच काम था।*

ग्राम जो जनपद का एक अंश था या सीमा पर होता था या शहर के पास होता था। उसके चारों ओर खेत और गोचर भूमि, वन और उपवन होते थे। आज भी आनन्दवन, प्रमोदवन, सीतावन, वृन्दावन आदि वनों के नाम जहां-तहां वास्तियों में भी पाये जाते हैं। सारन, चम्पारन, सहारनपुर आदि में अरण्य का पता लगता है। इन वन और अरण्यों में जंगली जानवर और जंगली आदमी भी रहते थे और तपस्वी, सन्यासी आनी कुटी बनाकर गांव से दूर रहा करते थे। जंगल प्रायः सबकी सम्पत्ति होती थी; परन्तु कोई-कोई जंगल, जो राजधानी में जुड़े हुए होते थे, राजा के अधिकार में समझे जाते थे। लोग जंगलों से लकड़ियां बेरोकटोक काट लाते थे और बेचते भी थे। गोचर भूमि में लोग अपने पशुओं को चरने के लिए छोड़ देते थे या कोई चरवाहा होता था जो थोड़ी मजूरी पर सबके पशु चराया करता था और चौमामे भर जंगलों में रहता और पशुओं की रक्षा करता था।†

इस काल में गांव के चारों तरफ कहीं कहीं दीवारें भी होती थी और

* जातक १११६; १३४३

† जातक १३१७; ५१०३; १३८८; ३१४६; ३४०१; १२४०; ४३२६; ११६४; १३

गांव के फाटक भी हुआ करते थे। खेतों में बाड़ें लगी होती थीं। जाल भी तने होते थे और खेतों के पहरेदार भी होते थे और हर गृहस्थी की जोत के चारों ओर नाली से सीमा बंधी होती थी। नालियां अक्सर साभे की हुआ करती थीं जिनसे दोनों ओर के खेत साभे में सींचे जाते थे। ये नालियां और गड्ढे, जिनमें पानी इकट्ठा किया जाता था, सभी रूप और आकार के होते थे। यह ठीक पता नहीं लगता कि किस प्रांत में औसत जोत का कितना वर्ग-फल ठहरता था; पर जातकों से यह पता चलता है कि एक-एक ब्राह्मण के पास हजार-हजार करीसों (बीघों) की खेती थी। एक ब्राह्मण-काशी भार-द्वज के यहां पाँच सौ हलों की खेती होती थी और वह मजूरों से हल जुतवाता था।

इस युग में लोग धूल भरे शहरों में रहना इस लोक और परलोक दोनों के लिए बुरा समझते थे। एक जगह लिखा है कि धूल भरे शहर में जो रहता है वह मोक्ष नहीं पा सकता और दूसरी जगह लिखा है कि शहर में कभी पवित्र मंत्रों का उच्चारण न करना चाहिए। सूत्रों में शहर के रहने वाले के लिए कोई संस्कार, यज्ञ या विधि नहीं दी हुई है; परन्तु किसानों के लिए पद-पद पर रीतियां और विधियां दी हुई हैं। हल जातने के समय अशनि, सीता, अरदा, पर्जन्य, इन्द्र और भग के नाम से हवन कराया जाता था। बोलने के समय काटने के समय, दवाने के समय और नये, अन्न को लाने के समय यज्ञ कराये जाते थे। यह सब किसानों की क्रिया थी। बार-बार यह आदेश दिया गया है कि चौरस्ते पर, मिटे पर, बल्मीकों (बाँबियों) पर, गांव से बाहर निकल कर यज्ञ या पूजा करनी चाहिए। यह गांव के रहने वाले गृहस्थों और विद्वानों के लिए भी आदेश है। शहर के रहने वालों के

*जातक १२३६; २७६१३५; ३७; ४३७०; १२१५;
११४३१५४; २११०; ४२७७; ४१६७; ३१३६; ५४१२
२३५७; १२७७; ३१६२; ३२६३; ४२७६; २१६५३००;

†आपस्तम्ब धर्मसूत्र, १३२१२ बौध्यायन सूत्र; २३१६,३३

लिए नहीं।* अंग्रेजी के (Buddhist India) 'बुद्धकालीन भारत' नामक ग्रंथ से मालूम होता है कि बौद्ध साहित्य से उस समय के केवल बीस शहरों का पता लगता है जिनमें से ये छः महानगर कहे गये हैं—श्रावस्ती, चम्पा, राजगृह, साकेत, कौशाम्बी और बनारस। कुशीनारा को, जहा बुद्ध भगवान ने शरीर-त्याग किया है, थेरआनन्द ने जंगल का एक छोटा-सा कस्बा लिखा है। पाटलीपुत्र अर्थात् आजकल के पटना का उस समय तक कोई पता नहीं था।

राज को खेती की उपज में से वार्षिक दसवां भाग तक कर मिलता था। वह इतने के लिए ही भूपति समझा जाता था। जो कुछ पैदावार होती थी उसे गांव का मुखिया भोजक या सरकारी कर्मचारी महामान्य या तो खलियान के सामने नाप लेता था या खड़ी फसल को देखकर अटकल कर लिया जाता था। कभी-कभी सरकार इस कर को बढ़ा कर किसी-किसी कारण से आठवां या द्वादश अंश तक भी कर देती थी। किसी-किसी को यह कर राजा छोड़ भी देता था, या किसी समूह या गांव को मुक्त भी कर देता था। यह तो राजाओं की बात हुई जिनके कर उगाहने की चर्चा पोथियों में आई; परन्तु पंचायती राज जहा-जहा थे वहा-वहां कर उगाहने की कोई चर्चा नहीं है। एकाध जगह पंचायती राज में चदे की तरह कर उगाहने की चर्चा भले ही है। एक जगह लिखा है कि मल्लों के पंचायती राज में पंचों ने यह आज्ञा निकाली थी कि जब बुद्ध भगवान अपनी यात्रा में बस्ती के पास आवे तो हर आदमी को उनका स्वागत करने के लिए जाना चाहिए। जो न जायगा उसको पांच सौ रुपये दंड के होंगे।† यद्यपि जंगल पर सार्वजनिक अधिकार था तथापि राजा को जब जरूरत पड़ती थी तब वह जंगल की जमीन को बेच सकता था और वह अपनी जायदाद में खेती करने वाले मजूरों और किसानों से बेगार भी ले सकता था। कहीं-कहीं के किसान गांव

*योभिल गृह्यसूत्र ४।४।२८,—३०, ३।५।३२-३५

विनय पिटक १।२४७

वाले राजा के लिए हरिण के जंगल घेरे रखते थे कि उन्हें समय-कुसमय शिकार हांकने के लिए काम-धाम छुड़ाकर बुलाया न जाय।

उस समय मगध के राज में भूमि बेची नहीं जा सकती थी; पर दान दी जा सकती थी। कासल के राज में बेची भी जा सकती थी। जिस भूमि में बाड़ नहीं लगी होती थी उसमें सब लोग अपने पशु चरा सकते थे, लकड़ी काट सकते थे, फूल चुन सकते थे, फल तोड़ सकते थे। खेती के नियम कड़े थे; परन्तु अच्छे थे और विवेक से भरे थे। मिलिकयत सिद्ध करने के लिए दस्तावेज (कागज-पत्र), गवाह और कब्जा प्रमाण माने जाते थे।*

यूनानी लेखकों से पता चलता है कि उस समय भी सियारी और उन्हारी की—रबी और खरीफ की—दो फसलें होती थीं और जिस तरह आजकल अनाज की खेती होती है उसी तरह तब भी होती थी। जो अनाज आज उपजते हैं वही तब भी उपजते थे। गन्ने की खेती होती थी और खंड-सालें चलती थीं। इतनी शकर तैयार होती थी कि संसार के बाहर के सभी सम्य देशों में यहां से शकर जाती थी।† मुन्दर और बारीक कपड़े, कपास, ऊन, रेशम, छाल आदि सभी तरह के, उस समय भी बनते थे और जंगल की औषधियां और तरह-तरह का माल तब भी उसी तरह काम में आता था। वाणिज्य-व्यापार उसी तरह बढ़ा-चढ़ा था। जो बातें हम पिछले अध्याय में लिख आये हैं उन बातों का, विदेशियों के बयान से, इस काल में बहुत ऊंची अवस्था में होना पाया जाता है। बौद्ध मत का प्रचार भारत के बाहर के देशों में इसी समय में शुरू हुआ। आना-जाना, वाणिज्य-व्यापार पहले से ज्यादा बढ़ गया। यहां के बने कपड़े, शकर, चित्रकारी, मूर्तियां हाथी-दांत की बनी मुन्दर चीजें, मसाले आदि भांति-भांति की वस्तुएं भारत से बाहर

*जातक ४।२८१; विनयपिटक २।१५८; आपस्तम्ब २।१।२८ (१)
१।६।१८ (२०); गौतम १२।२८; १२।१४-१७; बशिष्ठ-सूत्र १६।१६
†स्ट्राबो १५ सी—६६३, मेगस्थनीज खंड ६। स्ट्राबो १५ सी : ६०

बड़ी मात्रा में जाती थीं और यहां की सम्यता और धन-सम्पत्ति की कहानी सुनाती थीं।

दुर्भिक्षों के वारे में जहां अपने यहां के ग्रन्थों में चर्चा आया करती है वहां मेगस्थनीज-जैसे विदेशी कहते हैं कि भारतवर्ष में अकाल कभी पड़ता ही नहीं। इससे यह अटकल लगाई जा सकती है कि अकाल पड़ते थे जरूर; परंतु बहुत जल्दी-जल्दी नहीं पड़ते थे। अकाल जहाँ पड़ते थे वहीं उनका प्रभाव रहता था। वह सारे भारत में फैल नहीं जाते थे।

२. बौद्धकाल का अंत

जो काल बुद्धावतार पर समाप्त होता है जातकों में उस काल के सबध में एक बड़े महत्व की बात लिखी पाई जाती है। इस समय प्रायः सभी कारीगरी और कलाओं की पंचायतें संगठित थीं। 'मृग-पक्ख' जातक (४।४।११) में इस तरह की अठारह पंचायतों की चर्चा है, जिनमें से बड़इयों, लुहारों, खाल सिभाने वालों और चित्रकारों की पंचायतों का विशेष उल्लेख है। परंतु 'प्राचीन भारत के आर्थिक इतिहास' (पृ० १०१) में लिखा है—“डाक्टर मजूमदार ने इस काल के जातकों और धर्मग्रन्थों से पता लगाया है कि इन नौ प्रकार के पेशे वालों की पंचायतें संगठित थीं—(१) काठ के काम करनेवाले, जिनमें नाव बनानेवाले शामिल थे (२) धातु के काम करनेवाले, जिनमें सोना-चांदी साफ करनेवाले शामिल थे (३) माली (४) चित्रकार (५) बनजारे* (६) साहूकारी करनेवाले (७) खेती करनेवाले (८) व्यापार करनेवाले (९) पशुपालन करनेवाले।”† जातक (२।१८) में लिखा है कि एक जगह लकड़ी के काम का भारी केन्द्र था जिसमें एक हजार परिवार रहते थे। इनकी दो बराबर-बराबर पंचायतें थीं और हर पंचायत का सरपंच जेटुक कहलाता था। (जेटुक का अर्थ है बड़ा भाई)....इन पंचायतों में तीन विशेषताएं थीं : (१) सरपंच एक

*जातक ६।४२७, जातक ४१५, जातक २।२६५

†गौतम के सूत्र ११।२१

जेठुक होता था (२) पेशा अपने कुल का चलता था और (३) धंधा अपनी जगह में बंध जाता था, (या यों कहना चाहिए कि खास-खास धंधों के लिए, खास-खास जगहें प्रसिद्ध हो जाती थीं)। जातक (२११२१२ और ३१२८१) से मालूम होता है कि पंचायत का सरपंच राज-दरबार में रहने वाला एक बड़ा मंत्री होता था। जेठुक के सिवाय सरपंच को 'पमुक्क' (प्रमुख या सभापति) भी कहते थे।

बनारस के राज्य की यह विशेषता मालूम होती है कि उस समय पंचायत के सरपंच काशिराज के बड़े कृपापात्र होते थे। एक सरपंच तो सारे राज्य का कोषाध्यक्ष ही था।* ऐसा अनुमान होता है कि उस समय जो थोड़े से बड़े-बड़े शहर थे उनके आसपास के गांवों में कारीगरी और कलाओं के काम बढ़े-चढ़े थे। रोजगार इतना बढ़ गया था कि शहर के पास के गांवों में किसान लोग खेती के सिवाय हाथ की कलाओं में भी दक्ष हो गए थे। हम जातकों में बारम्बार ऐसे गांवों का वर्णन पाते हैं जैसे लुहारों के गांव जिनमें एक हजार घर लुहारों के ही थे। इसी तरह ऐसे गांव भी थे जिनमें पांच-पांच सौ घर बढ़इयों के थे। इसी प्रकार कुम्हारों के भी गांव-के-गांव बसे हुए थे। इसी तरह व्याधगाम, निषाधगाम इत्यादि पेशेवरों के नाम से भी गाँव बसे थे। इन गांवों के पेशेवाले शहर में रहनेवाले पेशेवालों से भिन्न थे। वे किसान भी थे और लुहारी भी करते थे। बढ़ई भी थे और खेती भी करते थे। खेती के काम में उनका सारा समय नहीं लगता था। वे खेती का सारा काम अपने हाथों से करते थे तो भी उन्हें अपने पेशे का काम करने के लिए काफी समय मिल जाता था, और जिनका पेशे का कारबार बहुत बढ़ा हुआ था वे मजूरों से काम लेते थे। जान पड़ता है कि उस समय बेकारी की बीमारी न थी।

*जातक ३१३८७; जातक २११२-५२

†जातक ३१२८१-६; जातक २११८१४०५; जातक ३१३७६।५०८;

ये पंचायतें कानून बनाती थीं, मुकदमे फैसल करती थीं और जो-कुछ फैसला होता था, उसको व्यवहार में लाना भी उन्हीं का काम था। विनय-पिटक में लिखा है कि किसी चोर स्त्री को तबतक संन्यासिनी बनाये जाने का अधिकार नहीं है जबतक पंचायतों की ओर से आज्ञा न मिल जाय। जो लोग पंचायत में शामिल होते थे उनके घरेलू भगड़े स्त्री-पुरुष का वैमनस्य भी, पंचायत के सामने आता था और पंचायत निबटारा करती थी।*

किमी लेख से ऐसा नहीं मालूम होता कि उस काल में खेती का काम कोई नीच काम समझा जाता हो। खेती करनेवाला अपने समाज में खेती करने के कारण अपमानित नहीं समझा जाता था। इसमें तो संदेह नहीं है कि खेती, व्यापार और पशु-पालन वैश्यों का ही काम था और जो ब्राह्मण पुरोहिती का काम करते थे या जो पढ़ाने का काम करते वे खेती नहीं करते थे। पर ऐसे ब्राह्मण भी थे, जो न तो पुरोहिती का काम जानते थे और न विद्या ही पढ़े होते थे। ऐसे ब्राह्मणों के लिए सब से उत्तम काम खेती थी, मध्यम काम बनियागिरी थी। सेवा का काम सबसे नीच काम था और भीख तो वही मांगता था जो गया-गुजरा अपाहिज था। क्षत्रिय का काम भी राजदरबार या सेना और पुलिस का था। परन्तु जिन्हें इस तरह का काम न मिलता था वे लाचार होकर वैश्य या शूद्र का काम करने लग जाते थे। राजा ययाति की कथा सतजुग की है। यह प्रसिद्ध है कि उन्होंने अपने कई बेटों को राज के काम से अनधिकारी बना दिया। उनके वंशवाले लाचार होकर वैश्य और शूद्र का काम करने लगे। नन्द और वृषभानु आदि गोपालक ऐसे ही अधिकारहीन किये हुए यादव थे। परन्तु वैश्य द्विज थे और द्विजा-तियों के सभी अधिकार इन्हें प्राप्त थे और जो ब्राह्मण या क्षत्रिय जन्म से वैश्यों का काम करने लगते थे उन्हें कोई नीच नहीं समझता था। उनका सम्मान भी ब्राह्मण और क्षत्रिय की तरह ही होता था।† यद्यपि ये ब्राह्मणत्व

*विनयपिटक ४।२२६; गौतम ११।२१

†सुत्तनिपात ३।६ मज्झिम निकाय २।१८०, ४।३६३

और क्षत्रियत्व से गिरे हुए समझे जाते थे तो भी वैश्यों का काम उठा लेने से कोई उन्हें ताने नहीं देता था और किसी तरह का अपमान नहीं होता था । जातकों और सूत्रों में ऐसे ब्राह्मणों की चर्चा बहुत आई है जो खेती करते हैं, गोएं चराते हैं, बकरी का रोजगार करते हैं, बनिये का काम करते हैं, शिकार खेलते हैं, बढ़ई और लुहार का काम करते हैं, जुलाहे का काम करते हैं, बाण चलाते हैं, बनजारों की रक्षा करते हैं, रथ हांकते हैं और सपेरे का काम करते हैं ।* इस तरह के ब्राह्मणों और क्षत्रियों के वंशवाले उस समय वैश्य और शूद्रवंशवालों से ऐसे मिलजुल गये और रोटी-बेटी का ऐसा घना संबंध हो गया कि आज इन पेशेवालों में से यह भेद करना मुश्किल हो गया है कि कौन ब्राह्मण है, कौन क्षत्रिय है और कौन वैश्य । यह भेद तो उन्हीं में देखा जाता है जो हाल के ही पतित हैं । अनगिनत ब्राह्मण और क्षत्रिय आज किसान का काम करते हैं और अपने को किसान कहने और मानने में उन्हें उचित गर्व है, वे उसे पतन नहीं मानते । उस काल में भी यही भाव सबसे ऊपर था । कहीं कहीं ब्राह्मण किसान बड़ा पवित्र आत्मा और भक्त समझा जाता था । एड़ी से चोटी तक बोधिसत्व गिना जाता था ।† “उत्तम खेती, मध्यम बान; निर्धन सेवा भीख निदान” यह आजकल की प्रसिद्ध कहावत उस समय भी ब्राह्मणों और क्षत्रियों के लिए राह दिखानेवाली थी ।

उस काल में मजूर या शूद्र दो तरह के थे । एक तो किसान आप ही मजूरी करते थे, दूसरे वह मजूर भी थे जिनके पास खेत न थे । जो मजूरी या नौकरी के सिवाय जीविका का और कोई उपाय न रखते थे, वे लकड़ी काटते थे, पानी भरते थे, हल जोतते थे और सेवा के सब तरह के काम करते थे । बड़े-बड़े खेतिहर अपने यहां मजूर रखकर खेती का काम कराते थे । मजूरी सब तरह की दी जाती थी । भोजन, कपड़ा और रुपये सबकी चाल

*जातक २।१६५; ३।२६३; ४।१६७-२७६; ३।४०१; ४।१५;
५।२२-४७२; २।२००; ६।१७०; ४।२०७; ४५७; ५।१२७

†जातक ३।१६२

थी। इन दो प्रकारों के सिवाय मजूरों का एक तीसरा प्रकार भी था। कैदी, ऋणी और प्राण-दंड के बदले काम करने वाले और अपने आप अपने को बेच देने वाले या न्यायालय से दंड पाकर काम करनेवाले दास या दासी अपनी मियाद भर या जीवन भर गुलामी करते थे। परन्तु ऐसे लोगों की गिनती भारतवर्ष में बहुत न थी। साधारण मजूरों की अपेक्षा इन दासों के साथ वर्तवि भी अच्छा ही होता था। इनका लाड़-प्यार होता था। इन्हें लिखना-पढ़ना और हाथ की कारीगरी भी सीखने का मौका दिया जाता था। कभी-कभी किसी के द्वारा इनके साथ कड़ाई का वर्तवि भी होता होगा, ऐसा प्रतीत होता है। दास जब तक मुक्त नहीं हो जाता था, तब तक धर्मसंघ में वह सम्मिलित नहीं होने पाता था। शायद इसलिए कि इससे उसके मालिक के काम में हर्ज होता। इन दासों और दासियों को अपने जीवन से असंतोष नहीं था क्योंकि इनमें भाग जाने की चर्चा कहीं नहीं पाई जाती।* नित्य की मजूरी करने वाला किसी का गुलाम तो नहीं होता था तो भी कभी-कभी ऐसे मौके आ जाते थे कि उसका जीवन गुलामों की अपेक्षा अधिक कठिन हो जाता था।†

उन दिनों रहन-सहन का खर्च कैसा था यह कहना तो मुश्किल है। परन्तु जातको से यह पता लगता है कि एक धेले के तेल या घी से आदमी का काम भरपूर चल सकता था। आठ कहपान में एक अच्छा गधा खरीदा जा सकता था। चौबीस मुद्राओं में एक जोड़ी बैल मिल जाते थे। अर्द्ध-मासक आजकल के धेले या पैसे के बराबर समझा जाय और कहपान या कार्शपण अठन्नी के बराबर माना जाय और उपर्युक्त मुद्राएं एक-एक रुपये के बराबर मानी जायें तो उस समय का खर्च आजकल की अपेक्षा बहुत सस्ता समझा जायगा। परन्तु यह बात अनुमान के आधार पर है।

* जातक १।४५१; मज्झिम निकाय १।१२५; जातक १।४०२; विनयपिटक १।७६; जातक ५।३१३; ६।५४७

† जातक १।४२२; ३।४४४

सिक्के का वास्तविक मूल्य कब कितना समझा जाना चाहिए, यह अर्थ-शास्त्र का एक जटिल प्रश्न है। इस पर यहाँ विचार करना हमारा उद्देश्य नहीं है।

: ४ :

चाणक्य के समय के गांव

इतिहास लिखने वालों के निकट बुद्धकाल का अन्त उस समय समझा जाता है जब चन्द्रगुप्त मौर्य गद्दी पर बैठा और शासन की असली बाग-डोर चाणक्य के हाथ में आई। इस प्रकांड पंडित ने 'अर्थशास्त्र' नाम की एक पुस्तक लिखी। इस पोथी से उस काल के बारे में पता लगता है, जिसमें मौर्यवंश का राज हुआ था और जो विक्रम के एक सौ तीस बरस पहले समाप्त होता है। 'अर्थशास्त्र' से मालूम होता है कि गांवों के कई तरह के विभाग किये गए थे। प्रथम कोटि, मध्यम कोटि और सबसे नीची कोटि के सिवाय ऐसे भी गांव थे, जिन्हें अन्न, पशु, सोना, जंगल की पैदावार आदि किसी रूप में कोई कर नहीं देना पड़ता था। ऐसे भी गांव थे जहाँ से कर के बदले बेगार मिलती थी और ऐसे भी थे जिनसे कर के बदले दूध, दही, मक्खन, घी आदि मिलते थे।* कुछ बातों में तो सभी गांव समान थे। हर गांव में बड़े-बूढ़ों की एक पंचायत होती थी। इस पंचायत का जो कोई सरपंच होता था वही सरकार की ओर से गांव का मुखिया माना जाता था। जमींदारी का कोई रिवाज नहीं था। हर किसान अपने खेत का मालिक था। गांव में घर सब एक साथ लगे होते थे, बीच में गलियां होती थीं। बस्ती के चारों ओर बहुत दूर तक फैली हुई नाज की, विशेष रूप से धान की, खेती होती थी। हर गांव से मिली हुई पशुओं के चरने के लिए गोचर-भूमि होती थी, जिसका बंदोबस्त राजा को करना पड़ता था। गृहस्थों के अपने-अपने

*अर्थशास्त्र (पंडित प्राणनाथ विद्यालंकार का उल्था) पृष्ठ १२६.

पशु अलग होते थे; पर गोचर-भूमि सबकी एक ही होती थी। इसी गोचर-भूमि में वे खुले हुए मैदान भी होते थे, जिनमें वनजारे और घूमनेवाली जंगली जातियां आकर ठहर जाती थीं और आये दिन डेरे डाला करती थीं।* गांव की हदें बंधी हुई थीं। हर गांव में चौपाल और दालानें पंचायतों के काम के लिए बनी होती थीं और गांव का भीतरी अर्थशास्त्र बिलकुल स्वतन्त्र होता था। गांव के भीतरी बंदोबस्त में किसी बाहरी का हाथ बिलकुल नहीं होता था। गांववाले सब बातों का निबटारा आप कर लेते थे। घूमनेवाली जातियां या चरवाहो की बस्तियां न तो बहुत काल के लिए टिकाऊ होती थीं और न गांव की तरह सुसंगठित। गोचर-भूमि और गोरक्षा उस समय में ऐसे महत्व की बात समझी जाती थी कि खेती के अध्यक्ष की तरह राज-दरवार में गोशाला के अध्यक्ष अलग और गोचर-भूमियों के अध्यक्ष अलग होते थे। गोशाला के अध्यक्ष को न केवल गाय-भैंस की ही खबर लेनी होती थी, बल्कि भेड़, वकरियां, गधे, सुअर, खच्चर और कुत्तों के लिए भी बंदोबस्त करना पड़ता था।

गांव बसाने के संबंध में कौटिल्य के अर्थशास्त्र में जो नियम दिये हुए हैं उनसे बहुत कुछ पता चलता है। यहां हम पंडित प्राणनाथ के अनुवाद (पृ० ३६-४१) से नीचे जो अवतरण देने हैं, उससे उस समय के गांव की राज्य-व्यवस्था का पता लगता है :

“परदेश या स्वदेश के निवासियों के द्वारा शून्य या नवीन जन-पद को बसाया जाय। प्रत्येक-ग्राम सौ परिवार से पांच सौ परिवार तक का हो। उसमें शूद्र कृषकों की संख्या अधिक हो और उनकी सीमा एक कोस से दो कोस तक विस्तृत हो। वह इस प्रकार स्थापित किये जायं कि एक-दूसरे की रक्षा कर सकें। नदी, पहाड़, जंगल, पेड़, गुहा, नहर, तालाब, सौंभल, पीपल तथा बड़ आदि से उसकी सीमा नियत की जाय। आठ सौ ग्रामों के

*मेगस्थनीज (अंग्रेजी १, ४७)

† अर्थशास्त्र पृ० ११५-१६, १२८

मध्य में स्थानीय, चार सौ ग्रामों के मध्य में द्वीगमुख, दो सौ ग्रामों के मध्य में खार्बटिक तथा दस ग्रामों के मध्य में संग्रहण नामक दुर्ग बनाये जायं। राष्ट्र-सीमाओं पर अंतपाल के दुर्ग खड़े किये जायं और प्रत्येक जनपद-द्वार उसके द्वारा सुरक्षित रखा जाय। वागुरिक, शबर, पुलिन्द, चंडाल तथा जंगली लोग शेष संपूर्ण सीमा की देख-रेख करें।

ऋत्तिक, आचार्य, पुरोहित तथा श्रोत्रियों को अभिरूप फलदायक ब्रह्मदेय* दिया जाय और उनको राज्यबंड तथा राज्य-कर से मुक्त किया जाय। अध्यक्ष, संख्यायक, गोप, स्थानिक, अनीकस्थ, चिकित्सक, अश्वदमक, जंघारिक, आदि राज-सेवकों को भूमि दी जाय; परन्तु उनको यह अधिकार न हो कि वह उसको बेच सकें या थाती (गिरवी) रख सकें। राजस्व देने-वालों को ऐसे खेत दिये जायं जोकि एक पुरुष के लिए पर्याप्त हों। खेति-हरों को नई भूमि न दी जाय। जो खेती न करें उनसे खेत छीनकर अन्यो के सिपुर्व किये जायं। ग्राम-भूतक या बनिये ही उनपर खेती करें। जो खेत जोतें वे सरकारी हर्जाना (अपहीन) भरें। जो सुगमता से राजस्व दें उनको धान्य, पशु तथा हिरण्य से सहायता पहुंचाई जाय। साथ ही खयाल रखा जाय कि अनुग्रह† तथा परिहार‡ से कोष की वृद्धि हो और

* ब्रह्मदेय वह दान है जोकि ब्राह्मणों को स्थिर रूप से सदा के लिए दे दिया जाय। ताम्रपत्र तथा बहुत से शिलालेख खोदने से मिले हैं, जिनमें पुराने राजाओं ने भिन्न-भिन्न भूमिभागों को ब्रह्मदेय के रूप में ब्राह्मणों को दिया था। (प्राणनाथ विद्यालंकार)

† अनुग्रह—राजा जो धन आदि इनाम उत्तम काम करने के बदले में कारीगरों—किसानों को दे उसको 'कौटिल्य' ने 'अनुग्रह' शब्द से सूचित किया है। (प्रा० वि०)

‡ परिहार—राज्यकर से मुक्त करना। पुत्रोत्पत्ति, वर्षगांठ आदि समय में राजा लोग ऐसा करते थे। कौटिल्य ने इन सब समयों को 'यथागतक' शब्द से सूचित किया है। (प्रा० वि०)

जिससे कोष के नुकसान की संभावना हो उसको न किया जाय। क्योंकि अल्पकोषवाला राजा नागरिकों तथा ग्रामीणों को ही मताता है। नये बंदो-बस्त या अन्य आकस्मिक समय में ही विशेष-विशेष व्यक्तियों को राजस्व से मुक्त किया जाय और जिनका राज्यकर मुक्ति या परिहार का समय समाप्त हो गया है उनपर पिता के तुल्य अनुग्रह रखा जाय।”

मौर्यकाल में भी देश का सबसे बड़ा कारबार खेती का था। इसपर सरकार का बहुत बड़ा ध्यान था। सब तरह के अनाज तो उपजते ही थे; साथ ही गन्ने की खेती बहुत जोरों से होती थी। गुड़, खांड, मिश्री, सभी कुछ तैयार होता था। अंगूर से भी एक प्रकार का मीठा तैयार किया जाता था जिसे मधु कहते थे। खांड तैयार करने के लिए गांव-गांव में खंडसालें थीं।* शक्कर का रोजगार बढ़ा-चढ़ा था। मेगस्थनीज लिखता है—

“भारतवर्ष में बड़े लंबे-चौड़े अत्यन्त उपजाऊ मैदान हैं जो खेतों से हरे-भरे दीखते हैं और जिनकी सिंचाई के लिए नदियों का जाल-सा बिछा दीखता है...जौ, गेहूं, चावल आदि के सिवाय ज्वार, बाजरा और अनेक प्रकार की दालें और मनुष्य और चौपायों के भोजन के योग्य नाना प्रकार के पौधे होते हैं—जाड़ों में और गर्मियों में दो बार बरसात होती है और साल में दो फसलें होती हैं। विविध प्रकार के स्वाद और मिठास के कंद, मूल और फल होते हैं, जिनसे मनुष्यों का बहुतायत से पोषण हो सकता है...। बुरे-से-बुरे युद्ध में भी किसानों की कोई हानि नहीं होती। फसल को, पशुओं को, खेतों को या पेड़-लतादि को कोई नुकसान नहीं पहुंचता। भारत के किसान बड़े मेहनती होते हैं, किराया से रहते हैं और ईमानदार होते हैं। सरकारी प्रबंध ऐसा अच्छा है कि खेती का व्यापार बड़ी अच्छी वशा में है। जन-धन की पूरी रक्षा है, न्याय और कानून बड़े अच्छे हैं।”†

* अर्थशास्त्र, पृ० ८५, ८६

† ‘प्राचीन भारत का इतिहास’ नामक ग्रंथ में पृ० १३६ पर का अवतरण।

मेगस्थनीज के लेख से मालूम होता है कि सिंचाई का प्रबंध बड़ा ही उत्तम था। नहरों का भी एक विभाग था, अर्थशास्त्र से भी इस बात का पूरा समर्थन होता है कि सिंचाई का सरकारी प्रबंध था और जिन लोगों को सरकार की तरफ से जल मिलता था, उसके लिए कर देना पड़ता था। खेती के लिए एक सरकारी अफसर अलग था, वह सीताध्यक्ष कहलाता था। उसके लिए अर्थशास्त्र पृष्ठ १०४ में लिखा है—

“सीताध्यक्ष (कृषि का अध्यक्ष या प्रबंधकर्ता) कृषि-विज्ञान, गुल्न-शास्त्र (भाड़ियों की विद्या), वृक्ष-विद्या तथा आयुर्वेद में पांडित्य प्राप्त कर, या उन लोगों से मंत्री कर, जोकि इन विद्याओं में पंडित हैं, धान्य, फूल-फल, शाक, कंद, मूल, पालक, सन, जूट, कपास, बीज आदि समय पर इकट्ठा करे। बहुत हलों से जोती हुई भूमि पर दास, कर्मकर, अपराधी आदिमियों से बीज डलवाये और हल, कृषि-संबंधी उपकरण तथा बैल उनको अपनी ओर से दे तथा काम हो जाने के बाद लौटा ले। तरखान (कर्मर), खटीक, तेली, रस्सी बटने वाले बहेरिये लोगों से उनको सहायता पहुंचाये। यदि काम ठीक न हो तो उनसे हरजाना वसूल किया जाय।”

कताई और बुनाई का काम भी मौर्यकाल में कोई छोटे पैमाने पर नहीं होता था। जिस तरह खेती के विभाग के लिए सरकारी अफसर सीताध्यक्ष होता था, उसी तरह कताई-बुनाई के काम पर एक सरकारी अफसर सूत्राध्यक्ष नियुक्त होता था। वह कारीगरों से सूत, कपड़ा और रस्सी का काम भी करवाता था। उसका काम था कि वैरागिनों, विधवाओं, विकलांग लड़कियों, राज्य-दंडितों, बूढ़ी राजदासियों और मंदिर के काम से छूटी देवदासियों और साधारणतया सभी लड़कियों से ऊन, रेशे, रूई, जूट, सन आदि का सूत कतवाये और सूत की चिकनाहट, मुटाई और उत्तम, मध्यम, निकृष्ट दशा देखकर उनका मेहनताना नियत करे। इस तरह सूत की कताई के लिए, उसकी ठीक जांच के लिए और ठीक-ठीक मजूरी देने के लिए बड़े विस्तार के नियम बने हुए थे।* और

इसके संबंध में, अपराधियों के लिए कड़े-कड़े दंड भी थे, जैसे जो मेहनताना लेकर काम न करें उनका अंगूठा काट दिया जाय। यही दंड उनको भी मिले जोकि माल खा गई हों, लेकर भाग गई हों या चुरा ले गई हों। जान पड़ता है कि कताई के ये नियम राजधानी के पास के गांव के हैं जिनका सरकारी विभाग से कपास, रुई और मजूरी पाने का बन्दोबस्त था और यह कानून उन लोगों के लिए था जो उस सरकारी विभाग के लिए कातने को बाध्य किये जा सकते थे। परन्तु औरों को कातने की मनाई न थी। शहर से दूसरे गांव में रहनेवाले लोग, बूढ़े, जवान, बच्चे सभी कातते होंगे। क्योंकि पहले तो पहनने के लिए कपड़े सारी आबादी को चाहिए और दूसरे भारत के बाहर से कपड़े के आने की कहीं चर्चा नहीं है। इसलिए कताई-बुनाई का काम अवश्य ही गांव में घर-घर होता था। सरकारी तौर से इस कला का प्रबंध यह प्रकट करता है कि कताई और बुनाई का रोजगार खेती-बाड़ी की तरह भारी महत्व रखता था। उस समय यह भी कानून था कि किसी के पास खेत हों और वह खेती न करता हो तो उससे खेत लेकर खेती करने वालों को दे दिया जाय। इससे कोई बेकार खेत न रख सकता था।

कोष्ठागाराध्यक्ष के कर्तव्यों की तालिका में* पता लगता है कि उस समय खेती के कारबार के साथ-ही-साथ खंडसाल के सिवाय जिसकी चर्चा हम कर चुके हैं, तिलहनों से तेल निकालने का काम बहुत जोरों से होता था। रंग का कारोबार भी बहुत बढ़ा-चढ़ा था। यूनानी लेखकों से पता चलता है कि लाख आदि कीड़ों से पैदा होने वाले रंग भी उस समय निकाले जाते थे और कपड़े रंगने के सिवाय लोग अपनी दाढ़ियां भी विविध रंगों में रंगते थे। कुम्हार लोग बड़े उत्तम-उत्तम प्रकार के बासन बनाते थे। बंसफोर बांस, बेंत और छल के सब तरह के सामान

* कौटिल्य अर्थशास्त्र (पं० प्राणनाथ), पृ० ८४ से ८८ तक :

† नियारकोस (अंग्रेजी), खंड ६ व १० ।

तैयार करते थे। नदी किनारे के गांव में घीमर मछलियां मारते थे और समुद्र के किनारे मोती और शंख खोज लाते थे। सूखी मछलियां और सूखे मांस के व्यापार की चर्चा से यह भी पता लगता है कि ये चीजें बिकने के लिए बहुत दूर-दूर भेजी जाती होंगी। उस समय आटा भी गांव से पिसकर शहर में बड़े भारी परिमाण में बिकने को आता होगा।

पंचायतों का संगठन उस समय इतने महत्व का था कि उसके लिए संघ वृत्त नाम का एक अधिकरण ही अर्थशास्त्र में अलग रखा गया है। इस अधिकरण के पढ़ने से* यह जान पड़ता है कि उस समय संघों के अधिकार बहुत बढ़े हुए थे। छोटी-छोटी पंचायतों को एकत्र करके लोगों ने संघ बना रखे थे। लिखा है कि कंबोज, मुराष्ट्र, क्षत्रिय तथा श्रेणी आदि संघ खेती, पशु-पालन और वाणिज्य से संतुष्ट रहते थे और शास्त्र की जीविका भी करते थे, अर्थात् सिपाही का काम भी करते थे। लिच्छविक, वृत्तिक, मुद्रक, कुक्कर, कुरुपांचाल आदि के संघ भी थे। इनके बारे में यह लिखा है कि ये लोग राजा शब्द से संतुष्ट रहते थे। आगे चलकर भेदनीति का वर्णन किया है, जिससे पता चलता है कि कम्बोज, मुराष्ट्र आदि बड़ी चतुर जाति के थे। लिच्छविक आदि नाम पर मोहित हो जाते थे। राजा स्वभावतः इन पंचायतों को निर्बल रखने में अधिक कल्याण समझता था। इसीलिए फोड़-फांस लगाये रहता था। भेदनीति का विस्तार करके लिखा है कि जब वह आपस में जुदा हो जाय तो उनको तितर-बितर कर दे। या सबको एक ही देश में बसाकर उनके पांच-पांच या दस-दस परिवार (कुल) को जोतने-बोने के लिये जमीन दे दे। राजा शब्द से संतुष्ट होनेवालों का राज-पुत्रों के अनुरूप शासन बनावे।

राजा को जब आवश्यकता होती थी या जब इसमें वह देश का कल्याण देखता था तो वह नये गांव बसाता था और नई गोचर-भूमि छुड़ाता था। किसी-किसी गांव को शुद्ध शूद्र गांव बना देता था और किसी में केवल

*अर्थशास्त्र (प्रा० वि०), पृ० ६५ से ३६१ तक।

ब्राह्मणों को बसाकर उनसे खेती कराता था। इस संबंध में हम एक लंबा अवतरण दे आये हैं। इसपर साधारणतया यह अनुमान किया जाता है कि शूद्रों को धीरे-धीरे ऊपर उठाकर वैश्य बनाने और ब्राह्मणों को धीरे-धीरे नीचे उतार कर खेतिहर बनाने में राजा का भी हाथ था। आज जो भारी संख्या में ब्राह्मण, क्षत्रिय और शूद्र भी खेती में लगे हुए हैं, उनका जहाँ प्रधान कारण भारतवर्ष में एकमात्र खेती के व्यवसाय का प्रधान होना है, वहाँ एक गौण कारण यह भी है कि समय-समय पर राजा वैश्य के सिवाय और वर्णों को भी खेती के काम में लगा देने में सहायक होता था।

मजूरों और गुलामों की दशा भी बड़ी अच्छी थी। अर्थशास्त्र में यह नियम दिया गया है कि जिस मजूर से कोई मजूरी पहले मेतयन की जाय उसे “मजूरी काम तथा समय के अनुसार दी जाय। खेतिहरों में हरवाहे; गऊओं का काम करने वालों में ग्वाले और अपना माल खरीदने वाले बनियों में दूकान पर बैठनेवालों में मेहनताना तय न होने पर आमदनी का दसवां भाग ग्रहण करे।” मजूरी के नियम ऐसे सुन्दर और नीतियुक्त बनाये गये थे कि काम करने वाला और कराने वाला दोनों में से किसी का हक नहीं मारा जाता था। दासों के नियम भी बड़े अच्छे थे। इनमें मनुष्यता की रक्षा थी। लिखा है :

“उदर दास को छोड़कर, आर्य जाति के नाबालिग शूद्रों को बेचने वाले संबंधी को १२ पण, वैश्य, क्षत्रिय तथा ब्राह्मण को बेचने वाले स्वकुटुम्बी को क्रमशः २४, २६, ४८ पण दंड दिया जाय। यदि यही काम करने वाला कोई बुरा का रिश्तेदार या दुश्मन हो तो उसको क्रेता तथा श्रोता को पूर्व, मध्यम तथा उत्तम साहस दंड के साथ-साथ मृत्यु-दंड तक दिया जा सकता है। स्लेच्छ लोग प्रजा बेच सकते हैं तथा गिरवी रख सकते हैं। आर्य लोग दास नहीं बनाये जा सकते हैं। पारिवारिक राज्यदंड तथा उत्पत्ति के साधन-विषयक आपत्ति के आ पड़ने पर किसी भी आर्य जाति के व्यक्ति को गिरवी रखा जा सकता है। निष्क्रय का धन मिलते ही सहायता देने में समर्थ बालक को शीघ्र ही छोड़ा लिया जाय। एक बार जिसने अपने आपको गिरवी रखा है,

या जिसको संबंधियों ने दो बार गिरवी रखा है, राज्यापराध करने पर या शत्रु के देश में भागने पर वह आजीवन दास बनाया जा सकता है। धन को चुराने वाले या किसी आर्य्य को दास बनानेवाले व्यक्तियों को आधा दंड दिया जाय। राज्यापराधी मृतप्राय तथा बीमार को भूल से गिरवी रखनेवाला अपना धन लौटा ले सकता है। जो कोई गिरवी में रखे व्यक्ति से मुर्दा या पाखाना-पेशाब उठवाये, या उसको झूठा खिलाये, या कपड़े पहनने को न देकर नंगा रखे, या पीटे या तकली दे या स्त्री का सतीत्व हरण करे, उसका (गिरवी रखने के बदले दिया गया) धन जब्त कर लिया जाय। दायी, दासी अर्धसौरी तथा नौकरानी सदा के लिए स्वतन्त्र कर दी जाय और उच्चकुल के मनुष्य को उसके घर से भाग जाने दिया जाय।”*

मजूरों के भी संघ हैं। और देश में पूंजीवाले लोग भी जरूर थे। खेतिहर और बनिये मिलकर अपने व्यापार-संघ बनाते थे। और मजूर लोग मिलकर अपने-अपने मजूरसंघ स्थापित किये हुए थे। जहां दोनों के संबंध में नियम दिये गये हैं वहां मजूरों की पंचायत (संघ भूताह) के लिए भी नियम हैं। इन सब बातों से पता लगता है कि उस समय मिलजुल कर संघ-शक्ति से काम लेने की चाल बहुत काल से दृढ़ हो चुकी थी।

सिक्कों का चलन भी उस समय निश्चित था। सोने और चांदी दोनों के सिक्के चलते थे। तांबे के सिक्के भी थे। रुपया पण कहलाता था। अठन्नी, चवन्नी, दुअन्नी भी चलती थी। तांबे के अघन्ने, पैसे, धेले आदि भी चलते थे, जिन्हें मापक, अर्द्ध मापक, काकिणी और अर्द्ध काकिणी कहते थे।† इन सिक्कों के सिवाय व्यापारी लोग एक-दूसरे पर हुंडी भी चलाते थे और इसमें तो तनिक भी संदेह नहीं है कि गांव में अदला-बदली का नियम पहले की

* कौटिल्य अर्थशास्त्र (प्रा० वि०), पृ० १२८ से १३१ तक।

† डाक्टर शामशास्त्री की राय में (अंग्रेजी अर्थशास्त्र, पृ० १८) ‘रूप्य रूप’ और कर्शपण एक ही चीज है। यहां पर रुपये के लिए पण शब्द का प्रयोग हुआ है।

तरह जारी था। गांव के लोग इतने मुखी थे कि चौपालों में और पंचायतों के दालानों में अक्सर नाटक हुआ करते थे। नाचने और गाने वाले आकर गांव वालों का मनोरंजन किया करते थे। अर्थशास्त्रकार ने इस बात का बहुत बुरा बतलाया है क्योंकि इससे गांववालों के घरेलू और खेत के काम-धंधों में बड़ा हर्ज पड़ता है।

प्रोफेसर सतोपकुमार दास लिखते हैं कि इस काल में गांव के रहने-वालों को आजकल के हिसाब में अमीर तो नहीं कहा जा सकता; परन्तु इसमें सदेह नहीं कि उनकी जितनी सीधी-सादी ज़रूरतें थी, सब सहज में पूरी होती थी। मेगस्थनीज लिखता है कि लोग बहुत सीधी चाल-ढाल के थे। स्वभाव के संयमी थे और गहने-पाते काम में तो ज़रूर लाने थे, परन्तु उनका पहिरावा बहुत सादा था। एक मूती धोती, कंधे पर चद्दर, सफेद चमड़े के जूते एक भलेमानस के काफी सामान थे। निर्धन और दरिद्र भी होते थे, परन्तु उनकी गिनती अत्यन्त कम थी और वे थोड़े से निर्धन भी सरकारी आश्रय में रहते थे। अर्थशास्त्र के अनुसार “राजा का कर्तव्य था कि बूढ़े, अपाहिज, पीड़ित और लाचार का पालन करे। और निर्धन एवं गर्भवती नारी और उनके बच्चों के पालन-पोषण का उचित प्रबंध करे।”*

दैवी विपत्तियों के उपाय वाले प्रकरण में आग, पानी, दुर्भिक्ष, चूहा, शेर, सांप तथा राक्षस इन आधिदैवी जोखिमों से जनपद को बचाने के उपाय बताये हैं। पानी, व्याधि, दुर्भिक्ष और चूहों से रक्षा के संबंध में जो-जो उपाय बताये हैं उन्हें हम यहां उद्धृत करते हैं—

पानी—नदी के किनारे गांववाले वर्षा की रातों में किनारे से दूर रह कर लकड़ी और बांस की नावें सदा अपने पास रखें। तूबा, मषक, नाव, तभेड़ तथा बेड़े द्वारा डूबते हुए लोगों को बचावें। जो लोग डूबते हुए मनुष्य को बचाने के लिए न दौड़ें उन पर १२ पण जुर्माना किया जाय बशर्त कि उनके पास नाव आदि तैरने का साधन हो। पर्वों में नदी की पूजा की जाय

* अर्थशास्त्र (प्रा० वि०), पृ० ३६ से ४१ तक।

माया वेद तथा योग-विद्या को जानने वाले वृष्टि के विरुद्ध उपाय करें। वृष्टि के रुकने पर इन्द्र, गंगा, पर्वत तथा महाकच्छ की पूजा की जाय।

व्याधि—चौदहवें अधिकरण (श्रीपनिषदिक) में विधान किये गये तरीकों के द्वारा बीमारी के भय को कम किया जाय। यही बात वैद्य लोग दवाइयों से और सिद्ध तथा तपस्वी लोग शान्तिमय साधन तथा प्रायश्चित्तों के द्वारा करें। फैलने वाली बीमारी (मरक) के संबंध में भी यही तरीके काम में लाये जायें। तीर्थों में नहाना, महाकच्छ का बढ़ाना, गौश्रों का श्मशान में दुहना, मुर्ब का धड़ जलाना तथा देवताओं के उपलक्ष में रातभर जागना आदि काम किये जायें। पशुओं की बीमारी फैलने पर परिवार के देवताओं की पूजा तथा पशुओं के ऊपर से धूपवत्ती उतारी जाय।

दुर्भिक्ष—दुर्भिक्ष के समय में राजा अनाज तथा बीज कम कीमत पर बाटे। लोगों को इधर-उधर देश में भेज दे। नये-नये कठिन कामों को शुरू करे और लोगों को भोजनाच्छादन दे। मित्र-राष्ट्रों का सहारा लेकर अमीरों पर टैक्स बढ़ावे तथा उनका इकट्ठा किया हुआ धन निकाल ले। जिस देश में फसल अच्छी हो उसमें अपनी प्रजा को लेकर चला जावे। नदी के किनारे धान, शाक, मूल तथा फलों की खेती करावे। मृग, पशु, पक्षी, शिकारी जंतु तथा मच्छियों का शिकार शुरू करे।

चूहा—चूहों के उत्पात होने पर बिल्ली तथा नेवलों को छोड़े। जो लोग चूहों को पकड़ कर न मारें उनपर, १२ पण जुर्माना किया जाय। जो लोग जंगली जानवरों के न होते हुए भी बिना कारण ही कुत्तों को छोड़ रखें उन पर भी पूर्ववत् दंड का विधान किया जाय। थूहड़ के दूध में धान को सान कर खेत में छोड़े। ऐन्द्रजालिक तरीकों को काम में लावे तथा चूहों के संबंध में राज्यकर लगावे। सिद्ध तथा तपस्वी लोग शान्तिमय उपायों को करें। पर्वों में मूषक-पूजा की जाय। टिट्ठीबल, पक्षी, कीड़े आदि के उत्पातों का उपाय भी इसी प्रकार किया जाय।

परन्तु उसी समय के लेखक मेगस्थनीज का कहना है कि भारतवर्ष में अकाल पड़ने की बात कहीं सुनी भी नहीं जाती। इससे प्रकट है कि चन्द्र-

गुप्त के राज्य का बन्दोबस्त ऐसा अच्छा था कि उस समय भारत में लोग अकाल की पीड़ा नहीं जानते थे । इस संबंध में चाणक्य का प्रबन्ध बड़ाई के योग्य था ।

: ५ :

प्राचीनकाल का अन्त

१. चाणक्य के बाद के पांच सौ वर्ष

अबतक गाव के बारे में जो-कुछ लिखा गया है वह अधिकतर उत्तर भारत के संबंध में है । चाणक्य के काल में अंत में दक्षिण भारत के आंध्रों और कुशानों का समय आता है, जो विक्रम से डेढ़ सौ वर्ष पहले आरम्भ होता है और साठे तीन सौ वर्ष पीछे खतम होता है । कुशानों का राज उत्तर में था और आंध्रों का दक्षिण में, जो सिलसिला मौर्यकाल तक खेती और व्यापार की उन्नति का चला आया था, उसके टूट जाने का अभी तक कोई कारण नहीं हुआ था । भारत की बहुत भारी आबादी पहले की तरह गांवों में रहती थी । गांव घोषों और पल्लियों में विभक्त थे । गाव का मुखिया आंध्रों के राज्य में सरकारी तौर से रखा जाता था । वह भगडों का निपटारा भी करता था और राजा के लिए कर भी उगाहता था । अधिकारी लोग जो माल-गुजारी मुकर्रर कर देते थे वह रकम जबतक राजा को मिलती जाती थी तबतक गाव की बातों में राजा दखल नहीं देता था । धर्मशास्त्र भी यही कहता है कि गांव सभी तरह से स्वतन्त्र है ।* और महाभारत में कुल की रीति† भी प्रमाण मानी गई है । उस समय भी एक ही परिवार में बंधे रहने की रीति सबसे अच्छी समझी जाती थी और अलग होकर रहना निर्बलता का चिन्ह था । इस काल में राजा अपने को पृथ्वी का ऐसा स्वामी समझता था कि जब उसे जरूरत होती थी प्रजा की राय लिये बिना ही भूमि

* पारस्कर गृह्यसूत्र १-८१३ ।

† महाभारत, आदिपर्व ११३-६ ।

ले लेता था या किसी को दे देता था। तो भी किसान के जीवन की दो बातों में उलट-पुलट करने की मनाही थी, एक उसका घर और दूसरा उसका खेत।

किसान या वैश्य खेती के काम के सिवा पशुपालन भी करता था। दान देना, पढ़ना, लिखना, व्यापार करना और लेन-देन करना भी उसका कर्तव्य था। उसे बीज बोना और अच्छे और बुरे खेतों की परख करना भी आना चाहिए था।*

उस समय जरूरत पड़ने पर किसान या वैश्य को सरकार से बोने को बीज भी मिलते थे और बदले में उपज का चौथाई हिस्सा सरकार लेती थी। सिंचाई के लिए जल का प्रबन्ध भी सरकारी था और जरूरत पर तकावी बंटती थी।†

बुनाई का काम इस काल में अपनी पराकाष्ठा को पहुंच चुका था। सूत, अन्न और रेशम के उत्तम-से-उत्तम कपड़े बनते थे। ऊन के कपड़ों में एक तरह का कपडा चूहों की ऊन से बनाया जाता था, जो विशेष रूप से गर्म रहता था। चीनी रेशम के सिवाय तीस प्रकार के देशी रेशम बरते जाते थे। द्रविड़ कवियों ने कुछ कपड़ों की उपमा 'दूध की वाष्प और सांप के केंचुल' तक से दी है और बारीकी का वर्णन करते हुए यह स्पष्ट लिखा है कि इनकी बनावट इतनी बारीक है कि आंखों को सूत के धागे अलग-अलग दिखाई नहीं पड़ते।

इस काल में भी पेशों और कलाओं के संघ या पंचायतें बनी हुई थीं। प्राचीन लिपियों से जुलाहों, कुम्हारों, तेलियों, ठठेरों, उदयात्रिकों, चित्र-

* पशूनां रक्षणं दानमिज्याध्ययनमेव च ।

वणिक्पथं कुसीदं च वंश्यस्य कृषिमेव च ॥ मनुः १ । ६०

बीजानामुप्तिविच्च स्यात्क्षेत्र दोषगुणस्य च ।

मानयोगं च जानीयात्तुलायोगांश्च सर्वशः ॥ मनुः ६ । ३३०

† महाभारत, शान्तिपर्व, अ० ८८ श्लो० २६-३०, अ० ८१ श्लोक २३-२४; सभा पर्व अ० ५ श्लो० ६६-७६ ।

कारों और मूर्तिकारों की पंचायत अलग-अलग बनी हुई थीं । जो विद्वान महाभारत की रचना का काल इसी काल के भीतर समझते हैं वे इस अवसर पर महाभारत का भी प्रमाण देकर कहते हैं कि इस समय पंचायतो का बड़ा भारी महत्व था । महाभारत में लिखा है कि इन पंचायतों से राज की शक्ति को प्रधान रूप से सहारा मिलता था ।* सरपच्चों में फूट डालना या बगावत के लिए उभारना, बैरी की हानि करने की मानी हुई रीति थी ।† जब गंधर्वों से दुर्योधन हार जाता है तब अपनी राजधानी को लौटना नहीं चाहता । कहता है कि मैं पंचायत के मुखियों को कैसे मुह दिखाऊंगा ।‡ उस समय पंचायत की रीतियां और नीतियां धर्मशास्त्र की तरह मानी जाती थी ।§ अपनी पंचायत के सामने वचन देकर जो तौड़ता था उसे राजा देश-निकाले का दण्ड देता था और पंचायत के विरुद्ध पाप करने वाले के लिए कोई प्रायश्चित्त न था । ऐसे कड़े नियमों के होते, कला और कारीगरी में ऊँची-से-ऊँची दशा को पहुंचना जरूरी था । इन्हीं पेशेवालों की धारे-धीरे जातियां बन गईं और उस समय की पंचायतें आज भी जातियों की पंचायतें बनी हुई हैं । मनुस्मृति में लिखा है कि राजा को चाहिए कि वैश्यो और शूद्रों से उनके कर्तव्यों का पालन करावे । अगर ये दोनों जातियां अपने-अपने कर्तव्यों का पालन न करेगी तो संसार की व्यवस्था ही नष्ट हो जायगी ॥ उस समय

* आश्रमवासिक पर्व, ७।७-९

† शान्ति पर्व ५९ । ४९, १९१ । ६४

‡ ब्राह्मणाः श्रेणिमुख्याश्च तथोदासीन वृत्तयः ।

किं मां वक्ष्यन्ति किं चापि प्रतिवक्ष्यामि तानहम् ।

वनपर्व २४६।१६

§ जातिजानपदान्धर्माश्रेणी धर्माश्च धर्मवित् ।

समीक्ष्य कुलधर्माश्च स्वधर्मं प्रतिपादयेत् ॥ मनुः ८।४१

॥ वैश्यशूद्रौ प्रयत्नेन स्वानि कर्माणि कारयेत् ।

तो हि च्युतौ स्वकर्मभ्यः क्षौभयेतामिव जगत् । मनुः ८।४१८

वर्ण धर्म की रक्षा बड़े महत्व की बात समझी जाती थी। नासिक की गुफा के शिलालेख में राजा गौतमीपुत्र बालाश्री बड़े गर्व के साथ कहता है कि हमने चारों वर्ण के एक-दूसरे में मिलकर गड़बड़ करने में रुकावट डाली है। इस प्रथा को बन्द कर दिया है।

इस काल में दासों के पास कोई सम्पत्ति न होती थी। वह मजूरी के रूप में ही कर देता था। शूद्रों का यही कर्तव्य था कि वे विशेष रूप से किसानों की सेवा करें।* बाकी दशा दासों की बही थी जो पिछले अध्याय में लिख आये हैं। एक बात इस काल की बड़े मार्कों की है कि किसान लोग शूद्रों से अर्थात् मजूरों से लगभग मिलते जा रहे थे। मजूर बढ़ते-बढ़ते चरवाहे से गोपालक बन जाता था। बनिये की नौकरी करते-करते आप ब्यापार करने लग जाता था। बहुत दिनों का किसान का मजूर इनाम में या मजूरी में काफी खेत पा जाता था। इस तरह मजूरी की जाति का आदमी बनिया, ग्वाला या खेतिहर हो जाता था। महाभारत में लिखा है कि छः गायों को चराने वाला एक गाय का सारा दूध पाने का अधिकारी है और सौ गायें चराता हो तो उसे नित्य के दूध के अलावा बरस के अन्त में एक जोड़ी गाय-बैल की मिलती थी। किसान के मजूर को मजूरी में उपज का सातवां भाग मिलता था। इस तरह मजूर जाति के लोग भी किसान बनते गये। ब्राह्मण और क्षत्रिय वैश्य तक बन जाते थे; परन्तु शूद्र नहीं हो सकते थे। इस तरह तीनों वर्णों के लोग धीरे-धीरे किसान होते गये और किसानों की गिनती बढ़ती गई।†

मनुस्मृति में राजा को अनाज के ऊपर छठा भाग; पेड़, मांस, मधु, घी, कन्दमूल, औषधि, मसाले, फल और फूल पर भी छठा भाग, पशु पर पांचवां भाग कर रूप में राजा को मिलता था।‡ महाभारत में साफ लिखा है

* महाभारत १२।६०।३७; १।१००।१

† महाभारत १२।६०।२४; २।५।५४; २।६१।२०।

‡ पञ्चाशद्भाग आदेयो राजा पशुहिरण्ययोः।

कि कर जरूर लगाये जाने चाहिएं । इसका कारण यह है कि प्रजा की रक्षा की जाती है और रक्षा में खर्च लगता है ; परन्तु कर बहुत हल्का लगना चाहिए । सभी किसानों से और गांवों के सभी लोगों से कर रुपये-पैसे के रूप में नहीं लिया जाता था । किसान अनाज के रूप में देता था, व्यापारी अपने व्यापार की वस्तु के रूप में देता था और मजूर और कारीगर अपने काम के रूप में देते थे । केवल शहर के लोग रुपये-पैसे के रूप में देते थे । जो चीजें जीवन के लिए अत्यन्त जरूरी थी, उन पर कर नहीं लगता था ।

धन पैदा करने के सात साधन बताये गये हैं । उनमें साहूकारी भी है, परिश्रम भी है और वाणिज्य भी है । साहूकारी और वाणिज्य तो धन के साधन है ही ; परन्तु परिश्रम जो अलग साधन दिखाया गया है, उसमें खेती-बारी और कारीगरी मुख्य हैं ।* सीधीसादी मजूरी से तो आज कोई धनी नहीं हो सकता । परन्तु मनुस्मृति में केवल परिश्रम का उल्लेख करने से हम यह कह सकते हैं कि शायद उस समय मजूरी बहुत अच्छी मिलती थी और चीजे सस्ती थी, इसलिए मजूर भी धनवान हो सकता था ।

सूद, कर, व्यापार और मजूरी इन सबके संबंध में विस्तार से जो नियम

धान्यानामष्टमोभागः षष्ठो द्वादश एव वा ॥ मनु० ७।१३०

आवदीताथ षड्भागं द्रुमांसमधुसर्पिषाम् ।

गन्धोषधिरसानां च पुण्यमूलफलस्य च ॥ मनु० ७।१३१

पत्रशाकतृणानां च चर्मणां वंदलस्य च ।

मृगमयानां च भाण्डानां सर्वस्याश्ममयस्य च । मनु० ७।१३२

आवदीताथ षड्भागं प्रणष्टाधिगनान्नुप ।

दशमं द्वादशं वापि सतां धर्ममनुस्मरन् ॥ मनु० ८।३३

धान्येऽष्टमं विशां शुक्लं विशं कार्षापणावरम् ।

कर्मापकरणाः शूद्राः कारवः शिल्पिनस्तथा ॥ मनु० १०।१२०

* सप्त वित्तागमा धर्म्या दायो लाभ क्रयो जयः ।

प्रयोगः कर्मयोगश्च सप्तप्रतिग्रह एव च ॥ मनु० १०।१२५

दिये गये हैं उनसे यह पता चलता है कि भारत में इस काल में आर्थिक संगठन जितना उत्तम था उससे अधिक अच्छा हो नहीं सकता। पेशेवर और कारीगर बड़े चतुर और दक्ष दीख पड़ते हैं। उस समय का जीवन बड़ा सम्य और ऊंचा दीख पड़ता है। भांति-भांति के अनाज, मसाले, फल-फूल तरकारियां जो काम आती थी, ऊंचे दर्जे की खेती की गवाह देती है। भारत का उस समय का जगद्व्यापी व्यापार वाणिज्य की उत्तम अवस्था बताता है। उस समय की अद्भुत और अपूर्व कारीगरी और कला बहुत ऊंची उन्नति की साक्षी है। सभी घरों में सोना, चाँदी, रत्न, गहने और रेशमी कपड़ों के होने की चर्चा है।*

२. गुप्तकाल

इसके बाद गुप्तों का समय आता है। गुप्तों के समय में भारतवर्ष के बाहर भी भारतीय लोग जाकर बसे। बंगाल से पूर्वोद्य वर्मा में जाकर भारतीयों ने बस्तियां बसाई और खेतीबारी करने लगे। इससे पहले के काल में भी पता चलता है कि भारत के दक्षिण के हिन्द महासागर में पच्छिम से पूरब तक फैले हुए अनेक टापुओं में बड़े-बड़े जहाजों पर भारत के व्यापारी आया-जाया करते थे और बहुत-से लोग जाकर वहीं बस भी गये थे और अपनी संस्कृति का प्रचार भी वहा कर रक्खा था। परन्तु जहां-जहां भारतीय गये और बसे, वहाँ उनका मुख्य कारबार खेती का ही था। अपनी मातृभूमि में तो सतजुग से गांव में रहना और खेती-बारी करना उनकी विशेषता थी। युग और राजा के बदलने से कभी तो राजा का अधिकार कम हो जाता था और कभी बढ़ जाता था। गाँव में उपज के बढ़ जाने से उसे दूर-दूर पहुंचाने के लिए व्यापार का सिलसिला बढ़ाया गया था। धीरे-

*तैजसानां मणीनां च सर्वस्याश्ममयस्य च ।

भस्मनाद्भिर्मृदा चैव शुद्धिरक्ता मनीषिभिः ॥ मनु० ५।१११

निलेप कांचनं भाण्डमद्भिरे व विशुद्धघति ।

अञ्जमश्ममयं चैव राजतं चानुपस्कृतम् ॥ मनु० ५।११२

धीरे व्यापारियों के केन्द्र बनते गये । यही केन्द्र नगर थे और इन नगरों में प्रजा की और प्रजा की सम्पत्ति की रक्षा करने के लिए राजधानियां बन गई थीं । ये शहर धीरे-धीरे बहुत बढ़ गये और बलवान राजाओं ने छोटे-छोटे राजाओं को अपने बस में करके अपने अधिकार दूर-दूर तक फैला दिये । इस तरह के राजाओं में मौर्यकाल के राजा बड़े-चढ़े थे । गुप्तकाल के राजा उनसे भी ज्यादा बड़े-चढ़े निकले ; पर उन्होंने एक बड़ा महत्व का काम भी किया । विदेशी जातियों ने भारत पर हमले किये थे और भारत पर अधिकार कर लिया था । अनेक लड़ाइयां हुईं । गुप्तों ने उन्हें परास्त किया और भारत को भारतीयों के हाथ में रक्खा । गुप्तों के समय में व्यापार बहुत बढ़ गया और शहरों को बड़ा लाभ हुआ तो भी भारत की बहुत भारी आबादी गांवों में ही रहती थी और खेती-बारी ही उनका खास धन्धा था । वे लोग कुओं से, नहरों से, तालावों से और गड्ढों से पानी लेकर सिंचाई करते थे । उस समय जल-संचय के लिए 'निपान' अर्थात् भारी-भारी जलाशय हुआ करते थे । यह नियम था कि प्रजा जब कोई नया धन्धा उठावे या नई जमीन जोते-बोवे या नहर, तालाब, कुएं खोदे और यह सबकुछ अपने काम के लिए करे तो जबतक खर्च का दूना लाभ न होने लगे तबतक राजा उनसे कुछ न मांगे । राजा इस तरह किसान से कर वसूल करे कि किमान नष्ट न होने पावें । जैसे माली फूल चुन लेता है परन्तु पेड़ की पूरी रक्षा करता है उसी तरह राजा भी वरने । राजा उस कोयले वाले की तरह न वरने जो कोयला लेने के लिए पेड़ को जला डालता है ।*

जंगल से उदुम्बर, अश्वत्थ, इमली, चंदन, वट, कदम्ब, अशोक, वकुल, आम, पुन्नाग, चम्पक, सरल, अनार, नीम, ताल, तमाल लिंकुच, नारियल, केला आदि के फल मिलते थे । खदिर, सागवान, साल, अर्जुन, शमी आदि बड़े-बड़े पेड़ों की भी चर्चा है । रमनों और जंगलों के अध्यक्ष भी हुआ करते

*शुक्रनीतिसार ४।४।६१-११२, १२४-१२७, ४।५।१४१ और २४२-४४, २२२-२३

थे, जिन्हें फूल-फल के जमने और विकसने का पूरा हाल मालूम होता था। वे पेड़ों का लगाना और पौधों का पालन-पोषण करना खूब जानते थे और औषधियों का अच्छा ज्ञान रखते थे।*

कलाओं का भी अच्छा विकास हुआ था। शुक्राचार्य ने तो चौसठ कलाओं का वर्णन किया है; परन्तु इसका यह मतलब नहीं है कि शुक्रनीतिकार के समय में ही ये चौसठ कलायें चली थी। उन्होंने केवल सूची तैयार की थी जिससे यह पता लगता है कि बहुत से ऐसे काम भी उस समय होते थे जिन्हें लोग आजकल बिलकुल नई बात समझते हैं। अर्क खींचना, औषधियां तैयार करना, धातुओं का विश्लेषण, धातुओं का मिश्रण, नमक का थंधा, पानी को पम्प करना, चमड़े को सिझाना इत्यादि काम आज से कम-से-कम डेढ़ हजार वर्ष पहले हुआ करते थे। हम इस जगह कताई-बनाई की तो चर्चा ही नहीं करते, जो न केवल देशव्यापक काम था बल्कि जिसमें सारे ससार में भारतवर्ष की विशेषता थी। शुक्राचार्य ने ऊन और रेशम के कपड़ों का केवल जिक्र ही नहीं किया है बल्कि इनके धोने और साफ करने की विधियां भी बताई हैं और याज्ञवल्क्य ने तो रुई से बने हुए कागज की भी चर्चा की है।†

जो गांव समुद्र के किनारे थे उन गांवों में अधिकांश मरजीवे रहते थे, और समुद्र से मोती, मूंगे, सीप आदि निकालने का काम बहुत जोरो से होता था। सीपों के सिवाय मछलियों, सीपों, शंखों और बाँसों से भी मोती मिलते थे। सबसे अधिक सीपों से मिलते थे।‡ लंका के रहनेवाले नकली मोती भी बनाया करते थे। उन दिनों साधारण लोग इतने सुखी थे कि सोना, चाँदी और रत्नों के गहने पहनने का आम रिवाज था। इससे

*शुक्रनीतिसार ४।५।६५-१०२, ११५-१२२; २।३२०- ३२४

†शुक्रनीतिसार ४।३, १।१८०

‡शुक्रनीतिसार ४।२।११७-११८

यह भी पता चलता है कि उस समय गाव-गांव में बड़े हुशियार सुनार होंगे .

बसफोर बांस की चीजों के बनाने में ऐसे कुशल थे कि उत्सव के अवसरों पर शुद्ध बांस के बने चार पहियों के रथ तैयार करते थे, जिनमें तीन-तीन गुम्बद होते थे और चौदह-पन्द्रह हाथ तक ऊंचे होते थे । इन रथों को वे बड़ी सुन्दरता से बनाते, रंगते और सजाते थे । इनपर बड़ी अच्छी चित्रकारी भी करते थे ।†

उस समय भी पंचायतें बनी हुई थीं । किसानों की, कारीगरों की, कलावंतों की, साहूकारों की, नटों की और संन्यासियों तक की पंचायतें संगठित थीं ।‡ इन पंचायतों के नियम बंधे हुए थे और वह सरकारी कानून के अन्तर्गत समझे जाते थे और उनके नियम उस समय की सरकार भी मानती थी । जो लोग पंचायत के सदस्यों में फूट डालने के अपराधी होते थे उन्हें सरकार की ओर से कड़ा दंड मिलता था । ‘क्योंकि ऐसों को यदि दंड न दिया गया तो यह फूट की बीमारी महामारी की तरह महाभयानक रीति से फैल जायगी ।’§ याज्ञवल्क्य-संहिता में लिखा है कि जो कोई पंचायत की चोरी करे या वचन तोड़े तो उसे देश-निकाला दिया जाय और उसकी सारी जायदाद जब्त कर ली जाय ।|| पंचायतों के पास पंचायती जायदाद हुआ करती थी और पंचायत के सङ्गठन के नियम विस्तार से बने हुए थे । परन्तु नियमों के बनाने में यह बात बराबर ध्यान में रखी जाती थी कि उस समय के कानून से और धर्मशास्त्र के नियमों से किसी तरह विरोध न पड़े । पंचायतों की नियमावली का नाम ‘समय’ था और पंचायतों के

* मृच्छकटिक नाटक और गरुड़ पुराण में अनेक अंशों से इन बातों का प्रमाण मिलता है ।

† बौल, फाहियान—(अंग्रेजी) पृ० ५६, ५७

‡ शुक्रनीतिसार ४।५।३५-३६

§ नारदस्मृति १०।६

|| याज्ञवल्क्य संहिता २।१८७-१८२

काम करने वाले 'कार्यचिन्तक' कहलाते थे। पंचायत में जो लोग ईमान-दारी और पवित्र आचरण के समझे जाते थे वही कार्यचिन्तक बनाये जाते थे और वही पंचायत के नाम से सरकारी दरबारों में भी काम करते थे। सरकार में उनकी बड़ी इज्जत की जाती थी। पंचायत के सदस्यों पर भी उनका अधिकार था। उनके फैसले जो न माने उन्हें वे दंड दे सकते थे। परन्तु वे भी पंचायत के नियमों से इतने बंधे होते थे कि जब वे आप चूक जाते थे या उनमें और सदस्यों में झगड़ा पड़ जाता था तब राजा ठीक निर्णय करता था।* परन्तु पंचायत को पूरा अधिकार था कि यदि कार्यचिन्तकों से कोई भारी अपराध हो जाय या वे फूट डालने वाले ठहर जाय या वे पंचायत का धन नष्ट करें तो उन्हें निकाल बाहर करे और राजा को केवल इस बात की सूचना दे दे। अगर कोई कार्यचिन्तक इतना प्रभाववाला निकले कि पंचायत उसे निकाल न सके तो मामला राजा तक आता था और राजा दोनों पक्षों की बातें सुनकर अपराधी को उचित दंड देता था।

पंचायत के होने और उसकी रीति पर काम होने का एक पुराना उदाहरण इन्दौर में मिले हुए स्कंदगुप्त के एक ताम्रपत्र से मिलता है।† इस लिपि में एक जायदाद के दान किये जाने की बात है कि उसके ब्याज से

*नारद-स्मृति १०।१, म० म० मित्रमिश्र विरचित वीरमित्रोदय (जीवानन्द विद्यासागर सम्पादित) पृ० ४२८

याज्ञवल्क्य ने तो मुखिया को भी दंड बिलाया है—

साहसी भेदकारी च गणद्रव्यविनाशकः ।

उच्छेद्यः सर्व एवैते विख्याप्यैव नृपे भृगुः ॥

गण द्रव्यं हरेद्यस्तु संविद् लंघयेच्च यः ।

सर्वस्वहरणं कृत्वा तं राष्ट्राद्विप्रवासयेत् ॥

याज्ञवल्क्य-स्मृतिः ॥ २।१८७

† प्लीट (अंग्रेजी में) गुप्त-लिपियां नं० १६ (संवत् ५२१ विक्रमीय)

सूर्य देवता की पूजा के लिए मंदिर में नित्य एक प्रदीप जला करे। सूर्य देवता के मंदिर में इस काम के लिए एक ब्राह्मण जो जायदाद दान में लिख देता है, उस जायदाद पर तेलियों की उस पंचायत का कब्जा सदा के लिए कर दिया, जिसका सरपंच इन्द्रपुर का रहने वाला जीवंत है, और इस जायदाद पर पंचायत का कब्जा उस समय तक रहेगा जबतक कि, इस वस्ती में चले जाने पर भी, उसमें पूरा एका बना रहे।

और समयों की तरह इस समय भी यही बात प्रचलित थी कि बेटा प्रायः अपने बाप का पेशा करता था। इसीसे पेशेवरों की भी जाति बन गई थी। जो अपने बाप-दादों का पेशा छोड़ देता था उसे राजा दंड भी दे सकता था। परन्तु यह अकारण छोड़ देनेवाले की बात थी। बाप-दादों के पेशे को छोड़ देने के लिए प्रबल कारण होने पर पेशा छोड़ने में हर्ज भी नहीं समझा जाता था। मंदसौर के शिलालेख में, जो कुमार गुप्त और बंधुवर्मन का लिखा है,* यह उल्लेख है कि रेशम बुननेवालों की एक पंचायत पहले लाट पर ठहरी थी, फिर दशपुर में वहाँ के राजा के गुणों पर मुग्ध होकर चली गई। वहाँ जाकर कुछ लोगों ने धनुर्विद्या सीखी, कुछ धार्मिक जीवन बिताने लगे, कुछ ज्योतिषी हो गए, कुछ कवि हो गए, कुछ सन्यासी हो गए और बाकी बाप-दादों की तरह रेशम बुनते रहे। इस पंचायत ने संवत् ४६२ विक्रमी संवत् में दशपुर में सूर्य का एक बहुत सुन्दर बड़ा मन्दिर बनाया और छत्तीस बरस बाद जब वह मरम्मत के योग्य हुआ तब उसी पंचायत ने संवत् ५२८ वि० में उसकी पूरी मरम्मत कराई। इस उदाहरण से दो बातें सिद्ध होती हैं। एक तो यह कि पंचायत में बंधकर भी लोगों को इतनी आजादी थी कि वे अपने मनमाने काम कर सकते थे, अपनी योग्यता बढ़ा सकते थे और अपना पारिवारिक पेशा छोड़ सकते थे। दूसरी बात यह मालूम होती है कि जातियों या पेशों की पंचायतों का संगठन बराबर पीढ़ी-दर-पीढ़ी चलता रहता था और काम करता रहता था। मजूरों का भी ऐसा

ही संगठन था और दासों और मजूरों की दशा भी वैसी ही थी जैसे पहले वर्णन की गई है। किसानों की सुख-समृद्धि गुप्तकाल में भी घटी नहीं थी।

: ६ :

पूर्व माध्यमिक काल

१. हर्षकाल और पीछे

गुप्तकाल के बाद ही हर्ष का समय आता है। गुप्त सम्राटों का बड़ा भारी साम्राज्य मध्य एशिया के जंगली लुटेरों की चढाई से तहस-नहस हो गया। जिस तरह गुप्त साम्राज्य बरबाद हुआ उसी तरह भारतवर्ष के भारी व्यापार को भी धक्का पहुंचा। परन्तु गांव और गांव के खेती आदि व्यापार इन धक्कों से भी नष्ट नहीं होते थे। यही सारी मुसीबतों में बेड़ा पार लगाते थे। हर्ष के समय में भी खेती-बारी के संबंध के सारे काम बराबर ज्यों-के-त्यों होते रहे। इस समय पच्छांह के देशों में क्या किसानों के काम में, क्या व्यापार में और क्या सामुद्रिक यात्राओं में जाटों का बोलबाला रहा। भारतवर्ष में, जैसे सदा से होता आया है, जनसमुदाय गांवों में ही रहता था और सबसे बड़ा कारवार खेती का था। गांव-गांव खंडसाले चलती थी, चरखे और करघे चलते थे, गांव-में सभी जाति और पेशे के मनुष्य रहते थे, सब तरह की कारीगरी और कला पहले की तरह बराबर समुन्नत अवस्था में थी। काश्मीर अपने चावलों और केशर के लिए प्रसिद्ध हो गया था ! मगध भी अपने चावलों के लिए मशहूर था। ह्युएनत्सांग ने लिखा है कि बहुत भारी अमीर लोग मगध के ही चावल खाते थे।* लिखा है कि मथुरा से १०० मील पच्छिम पार्यात्र नाम के स्थान में इस तरह का चावल होता था जो साठ दिनों में ही पकता था (इमे माठी का चावल कहते हैं और बरसात में अब भी साठ दिनों में ही पकता है) ह्युएनत्सांग ने लिखा है

*बील—ह्युएनत्सांग, (अंग्रेजी) जिल्द २, पृ० ८२

कि लोगों का साधारण भोजन घी, दूध, मक्खन, मलाई, खांड, मिश्री, रोटियां, तेल आदि था और जो मांस खाते थे वे हरिण का मांस और ताजी मछलियां खाते थे। फलो में, उसने लिखा है कि, इतने हैं कि नाम नहीं गिने जा सकते। आम्र, कपित्थ, आमलकी, मधूक, भद्रआमला, टिडक, उदुम्बर मोचा, पंस्य, नारियल, खजूर, लुकाट, नासपाती, वेर, अनन्नास, अंगूर इत्यादि-इत्यादि अनेक नाम गिनाये हैं। लिखा है कि काश्मीर फल-फूल के लिए मशहूर था।* शिक्षा के विषय में लिखा है कि सात और सात बरस से अधिक के लड़कों को पाँच विद्याये सिखाई जाती थी, जिनमे से दूसरी विद्या शिल्पस्थान विद्या थी, जिसमे कलाओं और यंत्रों का वर्णन है। कपड़ों के बारे में ह्युएनत्सांग ने भारत के कारीगरों की बड़ी प्रशंसा की है। सूती, रेशमी, छालटी, कंबल और कराल इन पांच प्रकार के वस्त्रों का वर्णन किया है। इनमें से कंबल से अभिप्राय था बहुत बारीक ऊनी कपड़े, जो बकरी के बहुत बारीक रोये से बनते थे। कराल एक जंगली जानवर के बारीक रोयों के बने कपड़े होते थे। ऐसे कपड़े अमीरों की फरमाइश पर ही बनते थे। वरोच या महाकच्छ की रूई सदा की तरह हर्ष के समय में भी मशहूर थी, उसके बारीक कपड़े भी मशहूर थे। बुनाई की कला किस ऊँचे दर्जे को पहुँच चुकी थी इस बात का थोड़ा-सा अन्दाजा वाण द्वारा वर्णित राज्यश्री के विवाह-प्रकरण से हो सकता है। लिखा है कि “महल, क्षौम, बादर, दुक्ल, लाला तंतुज, अंशुक और नैत्र से सुशोभित था जो साँप के कंचुल की तरह चमकते थे और अकठोर केले के पेड़ के भीतर के छिलके की तरह कोमल थे और इतने हलके थे कि साँस से उड़ जा सकते थे। छूने में ही उनका पता लगता था। चारों ओर हजारों इन्द्रधनुष की तरह चमक रहे थे।† क्षौम

*बील-ह्युएनत्सांग, (अंग्रेजी) जिल्द २ पृ० २३२।

†हर्षचरित्, चौथा उच्छ्वास, राज्यश्री के विवाह-प्रकरण से—

“क्षौमैश्च बादरैश्च दुक्लैश्च लालातंतुजैश्चांशुकैश्च नेत्रैश्च
निभौकनिर्भरकठोरम्भागभंकोमलैर्निःश्वासहार्यै स्पर्शानुमेयैर्वासोभिः
सर्वतः स्फुरद्भिरिन्द्रायुधसहस्रैरिव संच्छादितम्।

छाल के कपड़ों को कहते हैं, वादर रूई के कपड़ों को कहते हैं, लाल तंतुज उस कौशेय वस्त्र को कहते हैं जिसके तंतु कीड़े की लाला या राल से बनते हैं। नैत्र किसी वृक्ष विशेष की जड़ के रेशों से बने वस्त्र को कहते हैं और दुकूल गरम, महीन, रेशमी कपड़े होते थे और अंशुक वह रेशमी कपड़े थे जिनके धागे किरणों की तरह बारीक और चमकीले होते थे। कपड़ा अनेक प्रकार के रेशों और तंतुओं से बनता था, जिनका आज हमें पता भी नहीं है। और वह भी इतना बारीक बनता था कि छूने से ही पता लगता था कि कपड़ा है। उसकी बारीकी को मिल के कपड़े क्या पहुँचेंगे ! बुनने की कला इस हद को पहुँच चुकी थी तो साथ ही कातने की कला भी उसी हद तक पहुँच चुकी थी कि सूत के तार मुश्किल से दीख पड़ते थे।

बृहस्पति-संहिता से पता चलता है कि गाँव वाले मिलकर पंचायत बनाते थे, या जब कारीगर अपनी पंचायत स्थापित करते थे तो एक पंचायत-नामा लिख लेते थे, जिसमें कोई खटके की बात न रहे और सब लोग अपने कर्तव्यों में बंधे रहें। जब कभी चोरो, लूटेरों या वेकायदा सेनाओं का डर होता तो उसे सार्वजनिक विपत्ति समझा जाता था और उस जोखिम का मुकाबला सब मिलकर करते थे।* जब कोई ग्राम फायदे का काम किया जाता था, धर्मशाला, बावड़ी, कुएं, मंदिर, बाग-बगीचे आदि सबके लाभ के लिए बनवाने होते थे या कोई सार्वजनिक यज्ञ करना होता था तब पंचायत या गाँव की सभा ही इन कामों को संपन्न करती थी।† पंचायत की स्थापना के आरंभ में पहले परस्पर विश्वास दृढ़ करके किसी पवित्र विधि या लिखा-पढ़ी या मध्यस्थ से निश्चय कराकर पंचायत का काम आरंभ किया जाता था। पंचायत का काम करने वाले उसके श्रेष्ठी और दो-तीन या पाँच और सहायक होते थे।‡ जो लोग इस तरह कार्यचिंतक चुने जाते

* बृहस्पति-संहिता १७।५-६

† बृहस्पति-संहिता १७।११-१२

‡ बृहस्पति-संहिता १७।७, १७।१७, १७।९

ये वे वेद के धर्म को और अपने कर्तव्य को जानते थे, अच्छे कुल के होते थे और सब तरह के कारबार जानते थे। पंचायतों के संबंध में प्रायः वही नियम अब भी बरते जाते थे जिनकी चर्चा हम पहले कर आये हैं। उनको यहां दुहराना व्यर्थ होगा। इस काल में कारीगरों की ऐसी कंपनियां भी बनी हुई थीं जिनमें पूजा के बदले सदस्यों के कारीगरी के काम लगे हुए थे। बेगारी की चाल उस समय न थी। जरूरत पड़ने पर सरकार या पंचायत काम भी लेती थी और पूरी मजूरी देती थी।

ह्युएनत्सांग ने भारतवर्ष को बहुत समृद्ध और सुखी पाया। यहां पर सब तरह के लोगों में धरती का ठीक-ठीक रीति में बंटवारा था। खेती से थोड़े खर्च में बहुत-सा अनाज पैदा होता था और देश की बची हुई पैदावार व्यापारी लोग देश के बाहर ले जाते थे और बदले में सोना, रत्न और उत्तम-उत्तम वस्तुएं लाते थे। ससार के सभी सभ्य भागों में व्यापार बड़े मुर्भीते से जारी था। सोने-चांदी की अद्भुत धारा व्यापार के द्वारा भारत में उमड़ी चली आती थी। इसी धन की प्रसिद्धि से मुसलमान कासिम ने सिंधु देश पर चढ़ाई की और उसे अपने अधीन कर लिया। मुस्लिम अधिकार का यही आरम्भ था और विक्रम की ग्यारहवीं शताब्दी में इसी धन के लोभ से महमूद गजनवी के आक्रमण पर आक्रमण हुए और उसने लूट-लूट कर खजाने भरे। उसके बाद शहाबुद्दीन मुहम्मद गौरी ने तो विदेशी लुटेरों के लिए खैबर का मार्ग ही खोल दिया और भारत में मुसलिम साम्राज्य की नींव डाली। सैकड़ों बरस बाद भारत की इसी धन की प्रसिद्धि ने कोलंबस को अमेरिका भेजा और पाताल का पता लगवाया और वास्कोडीगामा से उत्तमाशा अंतरीप पार कराया और खैबर की राह से लाखों तातारियों, पठानों और मुगलों से भारत पर आक्रमण कराया।

२. मुस्लिम चढ़ाई के आरम्भ तक

विक्रम की लगभग दसवीं शताब्दी में भारतवर्ष अनेक राज्यों में बंटा था। उनका राज्य प्रजा के लिए बड़ा सुखदायक था। उनको कर बहुत हलका

देना पड़ता था, लगान बहुत कम देना पड़ता था, क्योंकि खेती के लिए धरती बहुत थी और प्रजा को किसी तरह का कष्ट न था। राजा लोग आपस में लड़ते थे, एक-दूसरे पर विजय कर लेते थे; परंतु प्रजा को बैरी राजा से भी कोई कष्ट न मिलता था। किसान शांति से हल जोत रहा है, खेती कर रहा है और उसके पड़ोस में घोर युद्ध हो रहा है। युद्ध करने वाले खेती को कोई हानि न पहुंचाते थे। व्यापारी अपना माल लाद कर देश-विदेश में बेचने को ले जाता था। युद्ध करने वाले सैनिक उसको नहीं छूते थे। सिंध के सिवाय और कहीं भी अहिंदू राज न था। कन्नोज, मालखेड़ और मुंगेर ये तीन बड़े-बड़े साम्राज्य थे; पर ये अपने-अपने स्थान के साम्राज्य थे। ऐसा भी न था कि राजपूतों पर मराठों या मराठों पर बंगालियों का राज हो। जहाँ कहीं भारत के और किसी प्रांत का दूसरे प्रांत पर कोई आधिपत्य था भी, तो वह इतना थोड़ा था कि विदेशी राज-सा प्रतीत न होता था, किसानों की रक्षा और शांत जीवन ने उन्हें राज के मामलों से इतना निश्चित कर दिया था कि उनकी खेती-बारी अगर आज एक राजा के अधीन है और कल दूसरे राज्य में चली जाती है तो इस हेर-फेर से उनके कारबार में कोई बाधा नहीं पड़ती थी। उनके भूमिकर और ग्राम-स्वराज्यों में कोई अंतर नहीं पड़ता था। इस कारण देश में क्रांति भी हो जाय और राज्य कितना ही बदल जाय वे इस बात से बिलकुल बेपरवाह रहने लगे। उनकी बान पड़ गई कि कोई भी राज हो उसकी अधीनता स्वीकार कर लेते थे। अलबेरूनी ने लिखा है कि राजा ज्यादा-से-ज्यादा छठा भाग कर लेता था। खेतों से, मजूरों से, कारीगरों से, व्यापारियों से सबसे, उनकी आमदनी पर कर लिया जाता था। केवल ब्राह्मणों से कर नहीं लिया जाता था।

विक्रम की तेरहवीं शताब्दी के पूर्वार्ध तक यहां के गांवों का जैसा संस्थान था; पं० गौरीशंकर हीराचंद ओझा ने उसका वर्णन अधिक विस्तार से किया है। हम उसे ज्यों-का-त्यों उद्धृत करेंगे*—

“शासन की सुविधा के लिए देश भिन्न-भिन्न भागों में बंटा हुआ था। मुख्य विभाग भुक्ति (प्रांत), विषय (जिला) और ग्राम थे। सबसे मुख्य संस्था ग्राम-संस्था थी। बहुत प्राचीनकाल से भारतवर्ष में ग्राम-संस्थाओं का प्रचार था। ग्राम के लिए वहां की पंचायत ही सब कुछ कार्य करती थी। केन्द्रीय सरकार का उसी से संबंध रहता था। ये ग्राम-संस्थाएं एक छोटा-सा प्रजातन्त्र थीं, इनमें प्रजा का अधिकार था। मुख्य सरकार के अधीन होते हुए भी ये एक प्रकार से स्वतन्त्र थीं।

प्राचीन तमिल-इतिहास से उस समय की शासन-पद्धति का विस्तृत परिचय मिलता है; परन्तु हम स्थानाभाव से संक्षिप्त वर्णन ही देंगे। शासन-कार्य में राजा को सहायता देने के लिए पांच समितियां होती थीं। इनके अतिरिक्त जिलों में तीन सभायें होती थीं। ब्राह्मण-सभा में सब ब्राह्मण सम्मिलित होते थे। व्यापारियों की सभा व्यापारादि का प्रबन्ध करती थी। चोल राजराज (प्रथम) के शिलालेख से १५० गांवों में ग्राम-सभाओं के होने का पता लगता है। इन सभाओं के अधिवेशन के लिए बड़े-बड़े भवन होते थे, जैसे तंजौर आदि में बने हुए हैं। साधारण गांवों में बड़े-बड़े वट-वृक्षों के नीचे सभाओं के अधिवेशन होते थे। ग्राम-सभाओं के दो रूप—विचार-सभा और शासन-सभा—रहते थे। संपूर्ण सभा के सभ्य कई समितियों में विभक्त कर दिये जाते थे। कृषि और उद्यान-सिंचाई, व्यापार, मंदिर, दान आदि के लिए भिन्न-भिन्न समितियां थीं। एक समय एक तालाब में पानी अधिक आने के कारण ग्राम को हानि पहुंचने की संभावना होने पर ग्राम-सभा ने तालाब-समिति को इसका सुधार करने के लिए बिना सूद रुपया दिया और कहा कि इसका सूद मन्दिर-समिति को दिया जाय। यदि कोई किसान कुछ वर्ष तक कर न देता था तो उससे भूमि छीन ली जाती थी। ऐसी जमीन फिर नीलाम कर दी जाती थी। भूमि बेचने या खरीदने पर ग्राम-सभा उसका पूरा विवरण तथा दस्तावेज अपने पास रखती थी। सारा हिसाब-किताब ताड़पत्रादि पर लिखा जाता था। सिंचाई की तरफ विशेष ध्यान दिया जाता था। जल का कोई भी स्रोत व्यर्थ नहीं जाने पाता था।

नहरों, तालाबों और कुओं की मरम्मत समय-समय पर होती थी। आय-व्यय के रजिस्ट्रों का निरीक्षण करने के लिए राज्य की ओर से अधिकारी नियुक्त किये जाते थे।

“चोल राजा परांतक के समय के शिलालेख से ग्राम-संस्थाओं की निर्माण-पद्धति पर बहुत प्रकाश पड़ता है। उसमें ग्राम-सभा के सभ्यों की योग्यता-अयोग्यता-संबंधी नियम, सभाओं के अधिवेशन के नियम, सभ्यों के सार्वजनिक चुनाव के नियम, उपसमितियों का निर्माण, आय-व्यय के परीक्षकों की नियुक्ति आदि पर विचार किया गया है। चुनाव सार्वजनिक होता था। इसकी विधि यह होती थी कि लोग ठीकरियों पर उम्मीदवार का नाम लिख कर घड़े में डाल देते थे, सबके सामने वह घड़ा खोल कर उम्मीदवारों के मत गिने जाते थे और अधिक मत से कोई उम्मीदवार चुना जाता था।”

“इन संस्थाओं का भारत की जनता पर जो सबसे अधिक व्यापक प्रभाव पड़ा, वह यह था कि वह ऊपर के राजकीय कार्यों से उदासीन रहने लगी। राज्य में चाहे कितने बड़े-बड़े परिवर्तन हो जायें; परन्तु पंचायतों के वैसे ही रहने से साधारण जनता में कोई परिवर्तन नहीं दीखता था। जन-साधारण को परतन्त्रता का कटु अनुभव नहीं होता था। इतने विशाल देश के भिन्न-भिन्न राज्यों के लिए यह कठिन भी है कि वे गांवों तक की सब बातों की तरफ ध्यान रख सकें। भारतवर्ष में इतने परिवर्तन हुए; परन्तु किसी ने पंचायतों को नष्ट करने का प्रयत्न नहीं किया।”

मुगल बादशाह अपने पतन-काल में जब भूमिकर अत्यधिक और वेदनी, कड़ाई और पशुता से वसूल करने लगे और ब्रिटिश सरकार ने भी वही नीति बराबर जारी रखी तो वही पंचायतें अत्याचार और हृदयहीनता के साथ सहयोग न कर सकी और अंततः टूट गई। पटवारी, जमींदार, तहसील-दार, नायब और सिपाही सभी मनमानी करने लगे। प्रजा की सुनने वाला कोई न रह गया। अदालतें, वकील, मुख्तार, पेशकार, मुंशी, मुहरिर, दलाल, सबके सब किसानों को बेतरह चूसने लगे और वह बेचारे बरवाद हो गए।

: ७ :

परमाध्यमिक काल

१. मुगलों से पहले

तारीख फीरोजशाही में वरनी ने अलाउद्दीन खिलजी के राज्य में उन भावों का विवरण दिया है, जिनपर कि उस समय के अनाज, तेल, घी, नमक आदि बादशाही हुक्म से बिकते थे। उसने जो भाव दिये हैं उसको आजकल के संयुक्तप्रान्त (उत्तर प्रदेश) के माने हुए तौल में नीचे दिया जाता है :

गेहूं	एक पैसे में	दो सेर
जौ	„	साढ़े तीन सेर
धान	„	तीन सेर
खड़ी माश	„	तीन सेर
चने की दाल	„	तीन सेर
मोठ	„	एक पंसेरी
खांड	„	साढ़े चार छटांक
गुड़	„	अठारह छटांक
मक्खन	„	साढ़े चौदह छटांक
तिल्ली का तेल	,	साढ़े सत्रह छटांक
नमक	„	नौ सेर

यह निर्व्वं बादशाह के हुक्म से दिल्ली के लिए मुकर्रिर हो गये थे। कोई एक धेला भी बढ़ा नहीं सकता था। यह इतना सस्ता है कि जल्दी विश्वास नहीं होता; पर उस समय खाने-पीने की सब चीजें इतनी सस्ती थीं कि इस भाव से लोग संतुष्ट थे। यह भाव उस समय सस्ते नहीं समझे जाते थे। ये इतने ऊंचे भाव थे कि सूखे के समय में भी दिल्ली में गल्ला भरा रहता था। भाव मंहगा करने के लिए गल्ले की बिक्री रोक लेना या नाज को जमा कर रखना घोर अपराध था, जिसके लिए कड़ा दंड मिलता था। किसानों को

अपना लगान देने के लिए अनाज का एक भाग दे देना पड़ता था। अपने खर्च से ज्यादा बचा हुआ अनाज जहां पैदा होता था, वहीं किसानों को बेच देना पड़ता था। कपड़े, खांड, शकर, चीनी, घी और तेल सबके भाव बाजारों में ठहरा दिये जाते थे। सब व्यापारियों को चाहे वह हिंदू हों या मुसलमान, ठहराये हुए भाव पर लेना-देना पड़ता था। व्यापारी लोग उसी बाजार में अत्यन्त सस्ता खरीद कर उसके आसपास अत्यन्त महंगा बेच नहीं सकते थे। इस तरह बादशाहत के अन्दर सब बाजार कायदे-कानून के अन्दर जकड़े हुए थे। शहन-ए-मंडी जिस किसी को कायदे के खिलाफ चलते हुए देखता था कोड़े लगाता था। दुधार गाय तीन-चार रुपये में और बकरी दस-बारह या चौदह पैसों में मिल जाती थी। कोई दुकानदार जो कम तौलता था तो वजन में जो कमी होती थी, उसके चूतड़ों का मास काट कर पूरी की जाती थी। जो दूकानदार जरा भी गड़बड़ करता पाया जाता था, लात मार कर बाजार से निकाल दिया जाता था। इसका फल यह होता था कि बनिये कुछ ज्यादा ही तौलते थे। बरनी ने इसके चार कारण बताये हैं। (१) बाजार के कायदों की सख्त पाबंदी, (२) करों का कड़ाई से उगाहा जाना, (३) लोगों में सिक्को का बहुत कम प्रचार, (४) कर्मचारियों की निष्पक्षता और ईमानदारी।

फीरोजशाह के समय में कर और भी घटा दिया गया। जिन खेतों की सरकारी नहरों से सिचाई होती थी उनसे पैदावार का दहियक अर्थात् पैदावार का दसवा भाग लिया जाता था। खाने-पहनने की चीजें इतनी सस्ती थीं कि अकाल के दिनों में भी लोग सहज में विपत्ति काट देते थे। महसूलों और लगानों की कमी से खेती और व्यापार को बहुत लाभ हुआ। शम्स सिराज अफ्रीफ़ ने नीचे लिखे भाव दिये हैं

गेहूं	एक पैसे में	पौने दो सेर
जौ	„	साढ़े तीन सेर
अन्य अनाज	„	साढ़े तीन सेर
बाल	„	साढ़े तीन सेर

घी

एक पैसे में

पौने तीन छटांक

चीनी

”

ढाई छटांक

कहते हैं कि उस समय बिना खेती के धरती का एक टुकड़ा नह बचा था ।

मध्यभारत में बहमनी राज्यों के समय में दशा कुछ बुरी न थी । इतिहास से पता चलता है कि जैसा प्राचीनकाल से बराबर चला आता था उस समय गांव-गांव अपना स्वतंत्र शासन रखते थे; हरेक गांव में पंचायत रहा करती थी जिसका सरपंच उत्तरभारत में मुखिया या चौधरी कहलाता था और दक्षिण भारत में ग्रामगरो कहलाता था । मुखिया या ग्रामगरो को या तो पंचायत की ओर से सेत मिल जाता था या फसल पर किसान लोग उपज का कुछ अंश दे देते थे । ग्रामगरो या मुखिया पंचायत की ओर से छोटे-छोटे मुकद्दमे फैसल करते थे, मालगुजारी उगाहते थे, अमन और शांति रखते थे । इन्हीं लोगों के द्वारा राजा और किसान के बीच संबंध बना रहता था । जान पड़ता है कि यही मुखिया या ग्रामगरो काल पाकर जमींदार बन गये । उस समय लगान जरूर बढ़ गया था, परंतु जितना बड़ा हुआ था उस हिमाव से वसूल किया जाना सिद्ध नहीं होता । लगान के सिवाय पचास तरह के और महसूल मुसलमान बादशाहों ने लगा दिये थे, जिनका संबंध शहरों से अधिक था । चाहे इन सब उपायों से राज्य की आय बहुत बढ़ जाती रही हो; परंतु पूरा महसूल वसूल होकर शाही खजाने तक पहुंचने में संदेह है । यह बात सचार्ई से कही जा सकती है कि आमदनी के इन उपायों में मुसलमान बादशाह भी किसान की भलाई का बराबर ख्याल रखा करता था तो भी किसान से अब बेगार ली जाने लगी । चराई और विवाह का महसूल भी लिया जाने लगा । आजकल के मोटरगवन, हथियावन, नचावन आदि भाति-भाति के 'आवनो' का अभी किसी ने सपना भी नहीं देखा था । लोगों को चूंगी के रूप में नाज, फल, तरकारी, तिलहन और जानवरों पर भी महसूल देना पड़ता था । शहर में आने का रास्ता एक ही था और फाटक पर पहरा रहता था । इसलिए शहर वाले महसूल से बच नहीं सकते थे ।

शुरू-शुरू में जब मुसलमानों ने भारत पर चढ़ाई की तो यहां से बहुत-सा धन लूट ले गये। पहले के मुसलमान बादशाहों में विजय की लालसा इतनी रहती थी कि वे बंदोबस्त की ओर ध्यान नहीं देते थे। देश के भीतर अमन-चैन लाने का काम बलबल ने किया। उसने ठगों और लुटेरों से देश की रक्षा की और उनका दमन किया। मुसलमानों के राज में कहीं-कहीं किसानों की दशा बिगड़ गई थी; परंतु अब किसान शांति से खेती करते थे और व्यापारी अपना माल एक देश से दूसरे देश में बिना लुटे लेजाने लगे। फीरोजशाह के समय में जब घोर अकाल पड़ा तो दिल्ली में अनाज तीन पैसे सेर तक* चढ़ गया। अलाउद्दीन के समय में शाही भंडारों और खत्तों में अनाज रक्खा जाता था और अकाल के समय में सस्ता बिकता था, परंतु उसके बाद उसके बनावे कानून टूट गये और चीजें मनमाने भाव पर बिकने लगी। मुहम्मद तुगलक के समय में नकली सिक्कों ने बहुत नुकसान पहुंचाया। कोई दस बरस तक घोर अकाल रहा। दो बरस में सत्तर लाख रुपये तकावी के लिए किसानों को बांटे गये। बादशाह ने शाही खत्तों से नाज निकलवाकर बटवाया और फकीरों और काजियों को हुक्म हुआ कि मुहताजों की फेहरिस्त बनावें। मुहरिरी के साथ काजी और अमीर गांव-गांव घूमकर अकाल-पीड़ितों को प्रति व्यक्ति तीन पाव अनाज बांटते थे। बड़ी-बड़ी खानकाहें मदद बांट रही थीं और कुतुबुद्दीन की खानकाह में, जिसमें चार सौ साठ आदमी नौकर थे, हजारों आदमी नित्य खिलाये जाते थे। हाथ की कारीगरी को बहुत बढ़ावा मिला। चार सौ रेशम बुननेवाले सरकारी कारखाने में काम करते थे और सब तरह की चीजें तैयार की जाती थीं। बासफ के लिखने से मालूम होता है कि विक्रम की चौदहवीं शताब्दी में

*आजकल अच्छी फसलों पर जो भाव होता है, उससे उस समय के घोर अकाल का भाव तिगुना-चौगुना सस्ता था। आज की-सी कमी नहीं थी। पैसा तो उस समय की अपेक्षा बहुत सस्ता है; परन्तु किसान के पास पैसे कहां ?

गुजरात एक बड़ा अमीर प्रांत था जिसकी आबादी घनी थी। इसमें सात हजार गांव और कस्बे थे और लोग धन-संपत्ति में रंजे-पुजे थे। खेती से पैदावार बड़ी अच्छी होती थी। अंगूरों की दो फसलें हुआ करती थीं। धरती इतनी उपजाऊ थी कि कपास की शाखाये भांड की तरह फैल जाया करती थी और एक बार के लगाने में वही पौधे कई साल तक बराबर कपास की डोडिया दिया करते थे। मारकोपोलो ने तो लिखा है कि कपास की खेती सारे भारत में फैली हुई थी और कपास के पेड़ छ-छः हाथ ऊंचे होते थे और बीस-तीस बरस तक कपास होती थी। मिर्च, अदरक और नील बहुतायत से होती थी। लाल और नीले चमड़े की चटाइयां बनती थी जिनमें कि चांदी और सोने के काम तथा पक्षी और पशुओं के चित्र कहे हुए होते थे। मारकोपोलो ने वहां के निवासियों को सुखी और समृद्ध पाया, व्यापार में कुशल और कारीगरी में दक्ष देखा।

चौदहवीं शताब्दी में बंगाल को इब्नबतूता ने बहुत सुखी और समृद्ध देश लिखा है। उसके समय में वहां चीजे अत्यन्त सस्ती थी और बहुत थोड़ी आमदनी पर आदमी बड़े ऐश-आराम में गुजर करता था। इस समय के लगभग सारे भारत में संपत्ति और समृद्धि बड़ी हुई थी। दिल्ली और आस-पास के प्रांतों की आमदनी गान करोड़ के लगभग थी और अकेले दुआबे की आमदनी पचासी लाख थी। चीजे इतनी सस्ती थी कि आदमी दो-चार पैसे लेकर एक जगह से दूसरी जगह की यात्रा कर सकता था। दिल्ली से फीरोजाबाद तक जाने के लिए गाड़ी में एक आदमी की जगह के लिए दो आने देने पड़ते थे। तीन आने में किराये का एक खच्चर और छ. आने में किराये का एक घोड़ा मिल जाता था और एक अठन्नी देने पर एक पालकी मिल जाती थी। काम के लिए कुली बहुत आसानी से मिल जाते थे और वे अच्छी कमाई भी कर लेते थे। सबके पास सोने और चांदी की बहुतायत थी, औरतें गहनों से लदी हुई थी* और कोई

*धन की बहुतायत थी। सिक्कों की बहुतायत न थी। चांदी-सोने के

घर ऐसा न था जिसमें बड़े अच्छे बिछौने, गद्दे, असहरियां और कोच न होते ।

परन्तु १४ वीं शताब्दी से देश की दशा बिगड़ने लगी । व्यापार और खेती दोनों की दशा कुछ गिर गई । चौदहवीं शताब्दी के अन्त में महवान नामक यात्री, जो चीनी च्वांगहो के साथ आया था, लिखता है कि बंगाल में चावल की दो फसलें होती हैं और गेहूँ, तिल, तरह-तरह की दालें, ज्वार, बाजरा, अदरक, सरसों, प्याज, भंग, बैंगन और भांति-भांति की साग-सब्जी बंगाल में बहुतायत से होती है । केला और बहुत से फल बहुतायत से होते हैं । इस देश में चाय नहीं होती और मेहमानों को चाय के बदले पान दिया जाता है । नारियल, चावल, ताड़ आदि से शराब बनती है और बाजार में बिकती है । इस देश में पांच-छः तरह के बहुत बारीक सूती कपड़े बुने जाते हैं । रेशमी रूमाल और टोपियां जिन पर सोने का काम होता है, चित्रकारी किये हुए सामान, खुदे हुए वरतन कटोरे, इस्पात के सामान जैसे : तलवार, बंदूक, छुरी, कैचियां सभी तरह की चीजें इस देश में तैयार होती हैं । एक तरह का सफेद कागज भी एक पेड़ की छाल से बनता है, जो हरिण की खाल की तरह चिकना व चमकदार होता है ।

अकबर का राज्यकाल पिछले दो हजार बरसों के भीतर सब तरह से बहुत अच्छा समझा जाता है । यह समय आज से केवल साठे तीन सौ बरस पहले हुआ है । हम इस काल से अपने काल का मुकाबला कर सकते हैं । हम गेहूँ के भाव को प्रमाण मान लें तो आजकल उसे पन्द्रह-सोलह गुना बढ़ा हुआ पाते हैं । दूध का भाव ग्यारह गुना बढ़ा हुआ है । घी सोलह गुना ज्यादा महंगा है । परन्तु मजूरी का भाव कितना बढ़ा ? पहले एक रुपया रोज में बीस मजूर या बीस कुली मिल जाते थे । आज शहरो में ज्यादा-से-ज्यादा

गहने बनते थे । वह बहुमूल्य धातुएं उचित रीति पर कला के काम में आती थीं । आज इस दरिद्र देश में जब आवामी दानों को तरस रहा है, गहने कहाँ पावे ! परन्तु गहनों का जहाँ थोड़ा बहुत रिवाज है वहाँ उसी प्राचीनकाल की छाया समझनी चाहिए ।

बढ़ा रेट दस रुपये में बीस कुली हैं। इस तरह चीजों का भाव जितना ऊंचा चढ़ गया है उतनी ऊंची मजूरी नहीं चढ़ी। होशियार-से-होशियार बढ़ई सवा रुपये रोज में मिलता है। उस समय ग्यारह पैसे रोज में मिलता था। बढ़ई की मजूरी माढ़े सात गुना से ज्यादा नहीं बढ़ी। यह नतीजा निकालने में किसी अर्थशास्त्री को मंकोच नहीं हो सकता कि उस समय से इस समय मंहगाई सोलह गुनी बढ़ गई है और मजूरी उसके मुकाबले में बहुत कम बढ़ी है। इसमें मजूरी की दशा उस समय के मुकाबले में बहुत गिरी हुई है। लगान उस काल में अधिकांश पैदावार का ही एक अंश लिया जाता था। किसान प्रायः रुपये नहीं देता था इसलिए जब जिनकी पैदावार हुई उतने का निश्चित अंश ही देना पड़ा। आज तो ऐसा नहीं है। आज देने की रकम बन्दोबस्त के समय में अंधाधुंध बढ़ जाती है; फिर चाहे सूखा पड़े या टिड्डी लग जाय या बाढ़ बहा ले जाय; पर किसान को सरकारी लगान उतना ही देना पड़ता है। किसी खेत से, जहां बीस मन अनाज होता था वहां दो मन लगान में दे दिया जाता था। उसी खेत में जब केवल दस मन होता तो लगान भी मन ही भर दिया जाता था और इतने ही में किसान का देना चुकता समझा जाता था। आज अगर किसी खेत के लगान के बीस रुपये देने हैं तो वह रकम देनी ही पड़ेगी, चाहे पैदावार कितनी ही कम हो। इस तरह उस समय के मुकाबले में इस समय किसान की हालत बिल्कुल रद्दी है।

तीसरी बड़ी बात यह है कि बादशाहों की ओर से जो कुछ लगान मुकर्रर होता था, वह सबका-सब वसूल नहीं हो सकता था। आज लगान जिस कड़ाई से वसूल किया जाता है उससे भी किसानों की बिल्कुल बरबादी है।

२. मुगलों का समय

अकबर के समय में खेती और किसानों की दशा वैसी ही अच्छी थी जैसी कि पठान बादशाहों के समय में थी। अलाउद्दीन के समय में खाने-पीने, पहनने की चीजों के जो भाव मुकर्रर कर दिये गये थे, उनकी पाबन्दी

बड़ी कड़ाई से होती थी; परन्तु अकबर के समय में वह कड़ाई नहीं थी, तो भी सभी चीजें बहुत सस्ती थीं। इससे पता चलता है कि उस समय लोग बहुत सुखी और धनवान थे। उसके समय में जो सिक्का चलता था और जिस मन के तौल का प्रमाण माना जाता था उसका वर्णन आईने-अकबरी में मौजूद है। आजकल जो सिक्के चलते हैं और जो तौल का प्रमाण है वह तबसे बहुत भिन्न हैं। हिसाब लगाकर हमने नीचे आजकल के हिसाब से उस समय के लिए हिसाब दिये हैं—

गेहूं	एक पैसे में	तेईस छटांक
जौ	„	पंतीस छटांक
उत्तम-से-उत्तम चावल	„	ढाई छटांक
अत्यन्त मामूली चावल	„	चौदह छटांक
मूंग की दाल	„	साढ़े पंद्रह छटांक
माश की दाल	„	सत्रह छटांक
मोठ की दाल	„	तेईस छटांक
चना	„	साढ़े सोलह छटांक
ज्वार	„	अठ्ठाईस छटांक
सफेद चीनी	„	सवा दो छटांक
शकर	„	पांच छटांक
घी	„	पौने तीन छटांक
तिल का तेल	„	साढ़े तीन छटांक
नमक	„	सत्तर छटांक
दूध	„	ग्यारह छटांक

इस तरह गेहूं रुपये में सवा दो मन से ज्यादा मिलता था और मामूली चावल डेढ़ मन के लगभग मिलता था। सबसे उत्तम प्रकार का चावल दस सेर का था। घी रुपये में साढ़े दस सेर पड़ता था। दूध का भाव एक रुपये में नौ पैसेरी था। और सब तरह की चीजें भी इसी तरह के भाव पर मिलती थीं। मामूली भेड़ रुपये-डेढ़ रुपये में मिल जाती थी। भेड़ का मांस एक रुपये

में अठारह सेर मिलता था। मजूरी बहुत सस्ती थी। रुपया रोज में बीस मजूर काम कर सकते थे। बड़ा ही होशियार बढ़ई ग्यारह पैसे रोज में काम करता था। एक मर्द के लिए एक महीना भर के अनाज का खर्च साढ़े तीन आने से ज्यादा नहीं था। उस समय का अमीर आदमी अपने भोजन में आठ आने महीने में ज्यादा खर्च नहीं कर सकता था। शहर के रहनेवाले पाँच आदमियों के एक अमीर परिवार का सारा खर्च तीन रुपये महीने से ज्यादा नहीं होता था। यह शहर के रहनेवालों का खर्च हुआ। देहात के रहनेवाले को तो पैसे खर्च करने का कोई काम न था। खेत की पैदावार से ही जब शहरवाले जीते थे, तब देहातों के क्या कहने हैं !

कताई और बुनाई का काम पहले की तरह सारे भारत में फैला हुआ था और अब इन कामों में मुसलमान भी पूरा हिस्सा ले रहे थे। राजधानी आगरे में और फतहपुर सीकरी में बारीक कपड़ों के अलावा शतरंजी, कालीन और बहुत अच्छे-अच्छे फर्श और पर्दों के कपड़े भी बुने जाते थे। गुजरात में पाटन और खानदेश में बुरहानपुर और ढाके में सुनारगांव सूती कपड़ों के लिए मशहूर थे। इन कपड़ा का नाम ही ढाका, पाटन, बुरहानपुरी और महमूदी आदि मशहूर था। सब तरह के सूती माल का चास बाजार बनारस था। पटने में भी कपास, खदर, खाड, अफीम आदि का बड़ा भारी व्यापार था। फैजाबाद जिले का टांडा रुई के माल का बहुत बड़ा बाजार था। गांव के उद्योग-धंधे जैसे युगों से चले आते थे, अकबर के समय में भी उसी तरह से बराबर हो रहे थे। उसमें किसी तरह की कमी नहीं आई थी। गांव में किसान और उसके जान-माल की रक्षा कुछ तो किसान आप ही कर लेता था, कुछ पंचायत के प्रबन्ध से होता था और कुछ सरकारी बंदोबस्त भी था। कोई ऐसा कारण समझ में नहीं आता कि किसान को आज के मुकाबले उस समय कम सुरक्षित समझे। आज भी लुटेरों से किसान उसी तरह सुरक्षित है जैसे उस समय था। परन्तु अकबर सहृदय शासक था और आज का शासन निष्प्राण हृदयहीन यंत्र है, जो निस्सहाय किसान को चूसकर उसका सारा तेल निकाल लेता है और उसे रक्तहीन छोड़ देता है। किसान की क्या रक्षा

हुई ? इस यंत्र से उसकी रक्षा करने वाला कौन ?

जहांगीर और शाहजहाँ तो अकबर के पद-चिह्न पर चलते थे। उनके समय में गांवों की दशा, भारत की आर्थिक और सामाजिक दशा वैसे ही रही जैसी अकबर के समय में। औरंगजेब के समय में अवनति का कुछ आरंभ हुआ। उसके बाद के बादशाहों ने तो लुटिया ही डुवोई।

३. औरंगजेब-काल और ब्रिटिशों का चूसनेवाला रोजगार

ईस्ट इण्डिया कम्पनी के एक बोल्ट्स नामक कर्मचारी ने लिखा है कि संवत् १८४७ में मालाबार के समुद्र-तट पर अंग्रेजी बेड़े ने हिन्दुस्तानी जहाजों की अंधाधुंध लूट की और अपार धन इकट्ठा कर लिया। बंगाल में जॉब चानाक नाम के अफसर के अधीन, जो कि हुगली में ईस्ट इण्डिया कम्पनी का सबसे बड़ा कारखानेदार था, अंग्रेजी सेना के भाग्य ने बहुत से पलटे खाये। बम्बई में कम्पनी के गवर्नर सर जॉन चाइल्ड ने अपनी नासमझी के व्यवहार से संवत् १७४७ के आपाढ़ के महीने तक युद्ध जारी रखा। यह व्यवहार कम्पनी के लिए घातक सिद्ध हुआ, क्योंकि इसमें कम्पनी को साठ लाख से अधिक रुपये का नुकसान हुआ। उनके साथ जो रियायतों की गई थीं वे छिन गई और भारतीयों और मुगलों के बीच उनकी साख उठ गई। सूरत के सूबेदार सैदी याकूब ने बम्बई पर दखल कर लिया, कम्पनी के कारखानेदारों को कैद कर लिया और उनकी गर्दनों में जंजीर बंधवा कर सड़कों पर फिराया।

इस युद्ध में हार जाने के कारण अंग्रेजों को संधि की प्रार्थना करनी पड़ी और उस समय के सम्राट् औरंगजेब से क्षमा मांगनी पड़ी। उन्होंने अंग्रेज राजदूत के नाम से अपने दो कारखानेदारों को दिल्ली भेजा। एक तो जार्ज वेल्डन था और दूसरा अब्राहमनवार नाम का यहूदी था। दोनों औरंगजेब के हुजूर में लाये गये। दूतों के लिए यह एक विलकुल नया ढंग था। उनके दोनों हाथ बंधे हुए थे और उनको सम्राट् के सामने साष्टांग

दण्डवत् करना पड़ा। सम्राट ने बड़ी लानत-मलामत की और तब पूछा कि तुम क्या चाहते हो? उन्होंने बड़ी दीनता से अपने कमरों को कबूल किया और माफी मांगी। फिर यह प्रार्थना की कि जो फर्मान हुजूर से जस्त किया गया है वह फिर जारी किया जाय और सैदी को सेना सहित बम्बई के टापू से लौटा लिया जाय।

औरंगजेब बड़ा दयालु और बुद्धिमान राजा था, उन्होंने उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली और इस शर्त पर माफ कर दिया कि नौ महीने के अन्दर गवर्नर चाइल्ड हिन्दुस्तान छोड़ दे और फिर न लौटे। फर्मान इस शर्त के ऊपर जारी किया गया कि जिम रिआया को लूटा गया है, जिनमें कर्ज लिया गया है और जिनका जो-कुछ अंग्रेजों ने नुकसान हुआ है उन सबको धन देकर संतुष्ट कर दिया जाय। मुगल सम्राट की कृपा से मामला तय हो गया और बगाल में कंपनी के एजेंट जाव चानाक ने अंग्रेजों को फिर से अपने कारखानों में आने के लिए आज्ञा प्राप्त कर ली। इसके बाद कंपनी ने भारत के कई भागों में अपने कारखाने खोल लिये। ये कारखाने अधिकांश कपड़े के थे। कपड़े का रोजगार औरंगजेब के समय में बहुत बढ़ा-चढ़ा था। उत्तर भारत में भारत के एक सिरे से दूसरे सिरे तक गांव-गांव में चरखा कतता था और खट्टर बुना जाता था। मुगलों के राज के अंत तक और ईस्ट इण्डिया कंपनी के राज्य के आरम्भ तक बाफता के लिए पटना, टांडा, चटगांव, इलाहाबाद, खैराबाद, वीरभूमि और लखीमपुर मशहूर थे। इन स्थानों के अतिरिक्त खास के लिए हरियाल, शांतिपुर, मऊ और लखनऊ का नाम था। चंदरकोना, शांतिपुर और हरिपाल की डोरिया सबसे अच्छी समझी जाती थी। महमुदी के लिए टांडा, इलाहाबाद, खैराबाद, जोहाना और लखनऊ का नाम था। ढाका, पटना, शांतिपुर, मेदनीपुर गाजीपुर, मालदह और बनारस आदि स्थान मलमल के लिए मशहूर थे। सत्तों के लिए और तरीदम के लिए इन सब स्थानों के अलावा हरीपाल, बुढावल, कासिमाबाद, शांतिपुर, बालासोर और कोहना खास जगहें समझी जाती थीं। ये सब इन कपड़ों के बाजारों के नाम हैं। इन बाजारों के आसपास

के गावों में बड़े जोरों से इन कपड़ों का काम होता था कि निर्मली और इंदूरी तलवारें, बरछे और खंजर यही से सारे भारत में जाते थे। दमिश्क की मशहूर तलवार के लिए यही से लोहा जाता था और शमशीर-ए-हिन्द का नाम मशहूर था। हीरे और सोने के लिए गोलकुंडा का राज संसार में प्रसिद्ध था और मछलीपट्टम के बंदरगाह से भारत के जहाज संसार के समुद्रों में आते-जाते थे। खेती उसी तरह वहां भी उपजाऊ थी जैसी कि उत्तर भारत में और जंगलों की पैदावार अपार धन-धान्य देनेवाली थी। सारे भारत में जहां तक किसानों का सम्बन्ध है, निरन्तर शांति का साम्राज्य था। किसानों का इतना आदर था कि कड़ाई करने वाले हाकिमों की जब लोग शिकायत करते थे तो वह बरखास्त कर दिये जाते थे। शाहजहा ने दाराशिकोह को राजगद्दी पाने के लिए अपनी बीमारी में उपदेश दिया कि किसानों को और सेना को खुश रखना। औरंगजेब ने अपने लड़कों को प्रजा संतुष्ट रखने के लिए बारबार उपदेश किया है। इन बादशाहों का जैसा उपदेश था वैसा ही अपना आचरण भी था। औरंगजेब की बादशाहत के जमाने में प्रजा को कुल्ह कण्ट होने लगा। प्रजा पर जुल्म होने लगा। औरंगजेब अपने पूर्वजों की अपेक्षा अधिक कट्टर था। हिन्दुओं पर उसकी कड़ी निगाह थी। उसने मारी हिन्दू-प्रजा पर जज्रिया लगाया और मुसलमानों का पक्षपात किया। साधारणतया कई प्रकार के महसूल जो हिन्दुओं को देने पड़ते थे, मुसलमानों को नहीं देने पड़ते थे। अनेक अपराधों में मुसलमान छोड़ दिया जाता, क्योंकि काफिर हिन्दुओं के विरुद्ध अपराध करने में मुसलमान दोषी नहीं समझा जाता था। किसान साल-के-साल मेहनत करता था; परन्तु लड़ाई के कारण शत्रु या बलवान जमींदार उसे लूट लेता था या उसके धन का अपहरण कर लेता था। संवत् १७१५ और १७१६ के लगभग इन्हीं कारणों से अनाज महंगा बिकने लगा था। नाके-नाके पर, घाटो पर, पहाड़ी गुजरगाहों पर और सरहदों पर जो माल गुजरता था उसपर राहदारी का माल का दशमांश महसूल देना पड़ता था। यह कहलाता था राहदारी का महसूल। परन्तु महसूल लेनेवाले लोग जुल्म करते थे और कड़ाई करते थे और कई

गुना अधिक वसूल कर लेते थे। इससे किसानों के ऊपर सारा बोझ आ पड़ता था। औरंगजेब ने पीछे इस तरह के महसूल उठा दिये तब कहीं जाकर भाव सुधरे और अनाज ठीक तरह से विकने लगा।

इन सब बातों के होते हुए भी मुगलों के साम्राज्य के अन्त में भी गल्ले का भाव प्रायः अकबर के समय के ही लगभग रहा।

: ८ :

कंपनी का कठोर राज्य

ईस्ट इण्डिया कम्पनी सन् १३५७ में ७० हजार पाँड की पूंजी के साथ भारत में रोजगार करने के लिए कायम हुई थी। उस समय इंग्लैंड की सरकार ने उसे एक हुक्मनामा देकर भारत के साथ रोजगार करने का इजारा दे दिया था। कम्पनी के सिवाय इंग्लैंड का कोई वाशिदा भारत के साथ रोजगार नहीं कर सकता था। कम्पनी का यह हुक्मनामा हर बीसवें बरस बदला जाता था। भारत में अशान्ति और बदइन्तजामी होने से कम्पनी भारत की मालिक बन गई, किन्तु इंग्लैंड में उसका वही पहला ही पद बना रहा। उसके हुक्मनामे का हर बीसवें वर्ष बदला जाना जारी रहा।

विक्रम की अठाहरवीं शताब्दी तक भारत के गांव जैसे अनाज उपजाते थे, वैसे ही हाथ की कलाओं में भी कुशल थे। भारत के करघों से बने हुए कपड़े एशिया और यूरोप के बाजारों पर दिये हुए थे; परन्तु देश की इस कोमल कला को आर्थिक कूटनीति और लूट की भारी भुजाओं ने दबा लिया, युगों के ठोस उद्योग और रोजगार को कुचल डाला। देश को विदेशी कपड़ों का मोहताज बना दिया। इस प्रलयकारी फेरफार से, भारत का दरजा सबसे बड़े बेचनेवाले से, सबसे बड़ा खरीदने वाला हो गया। बात यह थी कि पार्लियामेंट और ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने व्यापार में हर तरह अपना स्वार्थ देखा। पहले तो उन्होंने भारतवर्ष में कारखाने

खोले और उन कारखानों में यहां के दस्तकारों को काम करने के लिए मजबूर किया। धीरे-धीरे उन्होंने जहां तक बन पड़ा, देश के भारतीय कारखानों को हथिया लिया अथवा बन्द करा दिया। परन्तु जब विलायत में वहां के कारीगरों ने बहुत हल्ला मचाया, तब बाधक कर लगाये गये।

विक्रम की उन्नीसवीं सदी के प्रारम्भिक काल में विलायत की दस्तकारियों को बढ़ाने के लिए, उन्होंने हिन्दुस्तानी माल को विलायत जाने से रोकने वाले कानून बनाये। उनकी यह निश्चित नीति रही की भारत विलायत की दस्तकारियों की उन्नति का एक साधन बन जाय और वहां के कारखानों तथा करघों के लिए कच्चा माल तैयार करनेवाली एक मंडी बनी रहे।

इस नीति का पालन सख्ती से किया गया और इसमें उन्हें सफलता प्राप्त हुई। भारत में रहने वाले गोरे अधिकारियों को कपनी के कारखानों में काम करने के लिए, भारतीय दस्तकारों को लाचार करने की आज्ञा दी गई। भारतीय जुलाहों के गावों तथा उनकी जातियों के ऊपर, कम्पनी के व्यापारिक रेजिडेंटों को बहुत बड़े-बड़े अधिकार दिये गये। अधिक महसूल लगाकर भारत के सूती और रेशमी कपड़ों का विलायत जाना रोका गया। अंग्रेजी चीजे बिना महसूल दिये ही या कुछ नाम भर के महसूल पर भारत में आने दी गई।

इतिहासवेत्ता विलसन के शब्दों में, ब्रिटिश दस्तकार ने राजनीतिक हथियारों से अपने मुकाबले वाले हिन्दुस्तानी कारीगर को दबाया। क्योंकि दोनों को बराबर सुभीते होते तो ब्रिटिश कारीगर हिन्दुस्तानी का सामना न कर सकता। फल यह हुआ कि यहां के लाखों दस्तकारों की रोजी मारी गई और यहां की संपत्ति उपजाने का एक द्वार ही बन्द हो गया।

इस देश के ब्रिटिश-कालीन इतिहास में इस दुःखद घटना का वर्णन इसलिए जरूरी है कि हम समझे कि हम इतने दरिद्र क्यों हैं और हमें खेती का ही अकेला सहारा क्यों रह गया है। यूरोप में भाप के बल से चलनेवाले करघों के चल पड़ने से हमारे कारीगर बरबाद हो गये और जब हमारे यहां कल-

कारखाने चले तो इंग्लिस्तान अन्याय और डाह से काम लेने लगा। उसने हमारी सूत की कारीगरी पर कर लगा दिया। इसका फल यह हुआ कि हमारे कारीगर जापानी और चीनी दस्तकारों के मुकाबले के भी नहीं रहे। तबसे यह कर हमारी भाप से चलने वाली नई कलों का गला घोटता रहा है। जिन लाखों-करोड़ों दस्तकारों की रोजी मारी गई, वे बेचारे अपने-अपने गांवों में मजूरी और खेती आदि बंधों पर टूट पड़े, जिसे जो रोजगार पेट पालने को मिला, कर लिया। बेचारे लाचार होकर भंगी-डोम तक का काम करने लगे। जमीन बढ़ी नहीं, खेतिहर बढ़ गए। पैदावार घट गई, खानेवाले बढ़ गए। हट्टे-कट्टे काम करनेवाले ज्यादा रोटी के लालच में विदेशों में काम करने चले गये, गांव उजड़ गए। ससार के अनेक निर्जन टापू गुलामों से बस गए। अब यह दशा है कि हमारे देश की राष्ट्रीय-सम्पत्ति का एक ही साधन खेती रह गई है और आज हमारे देश के हर पांच आदमी में चार तो खेती पर ही दिन काटते हैं; परन्तु ब्रिटिश सरकार द्वारा जो भूमिकर वसूल किया जाता है वह एक तो बहुत ज्यादा है, दूसरे कई प्रांतों में तो वह इतना अनिश्चित है कि उसमें खेती की तरक्की करने का कभी किसी को हौसला नहीं हो सकता। कर बढ़ता ही जाता है। इंग्लिस्तान में सवत् १८५५ तक भूमिकर लगाने के सैकड़ा पीछे ५ और २० के बीच में था। उस समय के प्रधानमंत्री पिटने उसको सदा के लिए ठहरा दिया। यहाँ सम्बत् १८५० और १८७६ के बीच में बंगाल में भूमिकर लगाने का सैकड़ा पीछे ६० और उत्तरी भारत में सैकड़ा पीछे ८० रक्खा गया। यह सच है कि इतना भारी भूमिकर लगाने में अंग्रेजी सरकार ने अपने पहले के मुसलमान बादशाहों की ही नकल की थी। परन्तु इन दोनों में यह अन्तर था कि मुसलमान शासक जितना मांगते थे उतना कभी वसूल नहीं कर पाये। लेकिन अंग्रेजी सरकार जो कुछ मांगती रही है उसे कड़ाई के साथ वसूल भी करती आई है। बंगाल के अन्तिम मुसलमान हाकिम ने अपने राज्य में आखिर साल सवत् १८२१ में सवा करोड़ से कम ही रुपये की मालगुजारी वसूल की थी। बंगाल से अंग्रेजी सरकार तीस वर्ष के अन्दर ही ४ करोड़ २ लाख रुपये साल की मालगुजारी वसूल करने लगी।

संवत् १८५९ में अवध के नवाब ने इलाहाबाद और कुछ और जिले अंग्रेजी सरकार को दिये, जिनसे वह दो करोड़ २॥ लाख रुपये वार्षिक मालगुजारी माँगता था। तीन वर्ष के भीतर अंग्रेजी सरकार ने इनकी मालगुजारी बढ़ाकर २ करोड़ ४७॥ लाख रुपये से अधिक कर दी। मद्रास में पहले-पहल ईस्ट इंडिया कंपनी ने भूमि-कर नियत किया। बंबई में संवत् १८७४ में मराठों में जीती हुई भूमि की मालगुजारी १ करोड़ २० लाख रुपये थी। कुछ ही वर्षों के अंग्रेजी शासन के पीछे वह बढ़ाकर सवा दो करोड़ रुपये कर दी गई और तबसे वह लगातार बढ़ती ही जा रही है। पादरी हैबरन ने समस्त भारत में यात्रा करने और सब अंग्रेजी तथा देशी राज्यों का निरीक्षण करने के पीछे संवत् १८८३ में लिखा था कि कोई “देशी शासक इतना भूमिकर नहीं मागता जितना हम मांगते हैं।” संवत् १८८७ में कर्नल ब्रिग्स ने लिखा था कि “भारत का वर्तमान भूमिकर प्रायः समस्त लगान के बराबर है। इतना भूमिकर एशिया अथवा यूरोप में किसी शासक के समय कभी नहीं सुना गया।”^१

बंगाल और उत्तरी भारत के मनुष्यों के लिए अंग्रेजी शासन के प्रारम्भिक समय के इस भारी भूमि का बोझ धीरे-धीरे कुछ हलका हुआ। बंगाल में भूमिकर स्थायी नियत कर दिया गया और इसलिए कृषि की वृद्धि के साथ-साथ उसमें वृद्धि नहीं हो पाई है। अब वह लगान का केवल ३५ प्रतिशत रह गया है। (इसी में कुछ अन्य कर भी सम्मिलित हैं)। उत्तरी भारत में भूमिकर स्थायी तो नहीं किया गया परन्तु संवत् १८१२ में वह घटाकर लगान का ५० प्रति सैकड़ा कर दिया गया; परन्तु पीछे कुछ नवीन कर और भी लगा दिये गए, जिनके कारण भूमिकर बढ़ कर लगान का ६० प्रतिशत हो गया। जमींदारों ने अपना सारा बोझ इजाफा लगान करके दरिद्र किसानों पर डाल दिया। अन्त में सब तरह से किसानों की ही बरवादी हुई।

मद्रास और बम्बई की अवस्था और भी खराब है। वहाँ कृषक लोग

१ श्री रमेशचन्द्र दत्त के प्रसिद्ध ग्रंथ ‘ब्रिटिश भारत के आर्थिक इतिहास की भूमिका’ से उद्धृत।

सरकार को भूमिकर सीधे अदा करने है। उनके तथा सरकार के बीच कोई जमींदार मालगुजारी या ठेकेदार नहीं है। सन् १८२१ में सरकार ने आर्थिक लगान का आधा मालगुजारी के रूप में वसूल करने की अपनी इच्छा प्रकट की थी, परन्तु सरकार लगभग सारा आर्थिक लगान वसूल कर लेती है और बेचारे किसानों को अपने मेहनत-मजदूरी और औजारों, चौपायों इत्यादि में लगे हुए धन पर लाभ के सिवा कुछ भी नहीं बचता। हर तीसरे वरम नया बन्दोबस्त होता है। किसान जान भी नहीं पाता कि उसका लगान किस कारण से बढ़ाया जा रहा है। उसके सामने लग सारान्ते रह जाते हैं, या तो वह बढ़े हुए लगान को भानले या अपने बाप-दादों के लेन को ओडकर भूखा मरे। लगान की घट-वृद्धि के दिन की घट-वृद्धि सेनी को बढने नहीं देती। किसानों को कुछ बचत भी नहीं होने देनी और उन्हें दरिद्र और कर्जदार बनाये रखती है।

भारत में भूमिकर कबल भारी और डावांडोल ही नहीं है, बल्कि जिन सिद्धांतों पर लगान बढ़ाया जाता है वे जग में निराले हैं। और देशों की सरकार जनता का धन बढ़ाने में सहायता देती है, अपनी प्रजा को धनी और रंजी-पूजी देखना चाहती है और फिर उमकी आय का बहुत थोड़ा अंश उसकी रक्षा के लिए मागती है। भारत की सरकार कर लगा कर धन के इकट्ठा होने में बाधा डालती है। किसानों की आय को रोकती है और लगभग हर नए बंदोबस्त के समय अपनी मालगुजारी बढ़ाकर किसानों को सदा ही दरिद्र रखती है। इंग्लैंड, फ्रांस, जर्मनी, संयुक्त राज्य आदि देशों में सरकार अपनी प्रजा की आय बढ़ाती है। उनकी वस्तुओं की खपत के लिए नये-नये बाजार ढूँढती है, भरसक बाजारों के ऊपर अधिकार जमाने की चढ़ा-ऊँचरी में महासमर तक हो जाते हैं, उनकी आय के लिए नवीन द्वार खोलती है, उनकी भलाई के लिए मर मिटती है और उनके बढ़ते हुए ऐश्वर्य के साथ आप भी ऐश्वर्य वाली बनती है। भारत में अंग्रेजी सरकार ने न तो नई दस्तकारियों को चलाने में सहायता दी और न उमकी पुरानी दस्तकारियों को ही नया जीवन दिया, उल्टे वह हर बंदोबस्त के समय भूमि की पैदावार से मनमानी आमदनी करने के लिए उलट-फेर किया करती है। मद्रास और बम्बई में लोग हर नए बंदोबस्त को

अपने और सरकार के बीच एक युद्ध समझते हैं, जिसमें सरकार और प्रजा के बीच परस्परस्वार्थों की छीना-झपटी होती रहती है। इस लड़ाई का निर्णय करने के लिए कानून में कोई ठीक विधान या सीमा नहीं है। माल के हाकिमों का फैसला आखिरी होता है जिसकी कहीं अपील नहीं है। सरकार की आय और प्रजा की दरिद्रता नित्य बढ़ती ही चली जाती है।

धरती से जल खींचकर सूर्य मेघ बनाता तो है; परन्तु वह मेघ अपने लिए नहीं बनाता। वर्षा के रूप में हजार गुना अधिक फैला कर उसी धरती को लौटा देता है।^१ कवि ने अपने यहां कर या लगान लेने की नीति का इसी तरह हजारों गुना अधिक बखान किया है। परन्तु भारत भूमि से खींचा गया कर-रूपी जल आज विदेशों में ही बरसता और विदेशों को उपजाऊ बनाता है। हरेक देश उचित रीति से यही चाहता है कि उसके देश से वसूल किया गया टैक्स या कर वही खर्च किया जाय। अंग्रेजों के आने से पहले भारत के बुरे-से-बुरे हाकिमों के समय में भी यही बात थी। पठान और मुगल बादशाह जो अपार धन सेना में खर्च करते थे; पर उससे तो यहीं के बहुत से बड़े-बड़े घरानों का और लाखों परिवारों का पालन होता था। वे जो बड़े-बड़े सुन्दर महल बनाने में या सुख और भोग-विलास की चीजों में या दिखावटी ठाट-बाट में धन लगाते थे, वह धन इसी देश के कारीगरों और दस्तकारों के हाथ में जाता था और उनका हौसला बढ़ता था। सरदार, सूबेदार, सेनापति, दीवान, काजी और उनसे छोटे हाकिम भी अपने मालिकों की देखादेखी वैसा ही बरताव करते थे, और अनेकों मस्जिद, मन्दिर, सड़के, नहरें और तालाब उनकी उदारता के गवाह हैं। वे धन को बेहिसाब उड़ाते भी थे तो वह उड़कर भी भारत के ही वायु-मंडल में फैल जाता था, कहीं बाहर न जाता था।

१ प्रजानामेव भूत्यर्थं सतां यो बलिमप्रहीत् ।

सहस्रगुणमुत्स्रष्टुमावत्ते हि रसं रविः ॥ रघुवंश । १ । १८

रवि जैसे हजार गुना बरसा देने के लिए रस लेता है, वह (राजा) भी प्रजाओं का धन बढ़ाने के लिए ही उनसे कर लेता था।

बुद्धिमान और मूर्ख दोनों तरह के शासकों के समय में भी कर के रूप में वसूल किया हुआ धन लौट कर प्रजा के ही व्यापार और दस्तकारियों को बढ़ाता था। पर भारत में ईस्ट इंडिया कम्पनी के राज्य का आरम्भ होते ही दशा बदल गई। कम्पनी भारत को एक बड़ी जागीर या बड़ा खेत समझती थी, जिसका लाभ यहाँ से जाकर यूरोप में जमा होता था। भारत की सरकार में मोटी तनख्वाहों वाले और आमदनी के जितने ओहदे थे, कम्पनी अपने देश वालों को ही देने लगी। भारत की आय से व्यापार की वस्तुएँ मोल लेती थी और फिर उन्हें अपने निजी लाभ के लिए यूरोप में लेजा कर बेचती थी। व्यापार में लगी हुई अपनी पूँजी का भारी व्याज वह भारत से कड़ाई के साथ वसूल करती थी। साराश यह कि भारत में भारी कर से जो कुछ वसूल किया जा सकता था, उसमें से बहुत जरूरी वन्दोबस्ती खर्चों के पीछे जो कुछ बचता था, वह किसी-न-किसी तरह यूरोप पहुँचाया जाता था।

: ६ :

विक्टोरिया के राज से वर्तमान काल तक

१. भारत का रक्त-शोषण

जब संवत् १८६४ में अंग्रेजी राजगद्दी पर विक्टोरिया बैठीं उस समय कम्पनी ने भारत की जितनी हानि करनी थी, कर ली थी। भारत के रेशमी रूमाल यूरोप में अब भी बिक रहे थे और यहां के तैयार रेशमी माल पर अब भी वहां कड़ा महसूल लगता था। पार्लमेंट ने कमीशन बैठाकर इस बात की जांच की कि ब्रिटिश करघों के लिए भारत में रुई कैसे उपजाई जा सकती है। यह न पूछा कि भारतीय करघों की बढ़ती कैसे कराई जाय। लगातार डेढ़ सदी के लगभग भारत के गोरे प्रभुओं की नीति यही रही है कि ब्रिटिश कारखानों की बढ़ती भारत के द्वारा कैसे की जाय। भारत के कारीगरों की भलाई का कोई ख्याल नहीं रहा। भारत की बनी चीजें जो जहाजों में भर-भर कर विलायत भेजी जाती थीं, वह धीरे-धीरे सपने का धन होती गईं।

हम पिछले वर्षों में यह देख चुके हैं, कि कम्पनी इस्तमरारी बंदोबस्त और प्रांतों में बढ़ाना नहीं चाहती थी। उत्तर भारत में उसने पहले लगान सैकड़ा पीछे ३ भाग मालगुजारी कर लगाया, फिर उसे ७५ प्रति सैकड़ा और फिर ६३ प्रति सैकड़ा घटाया। यह भी जब ठीक न ठहरा तब संवत् १९१२ में लगान का आधा कर दिया। संवत् १९२१ में यही लगान की आधी मालगुजारी का हिसाब दक्षिण भारत पर भी लगा दिया गया। संसार के किसी भी सम्य देश में खेती के मुनाफे के ऊपर आधों-आध आय-कर का लगाना आज तक सुना नहीं गया। पर इतने पर भी संतोष होता तो भी बड़ी बात थी।

संवत् १९१५ में कम्पनी का राज समाप्त हो गया। पार्लमेंट के अधिकार में आ जाने पर भी भारत को लेने-के-देने ही पड़े। पार्लमेंट ने कंपनी के हाथों से भारत की जागीर को खरीद कर अपने हाथ में कर लिया और इसी जागीर ने अपने मत्थे ऋण लेकर कम्पनी का देना चुका दिया। कम्पनी ने जो टोटा उठाया था वह भी भारत के मत्थे मढ़ा गया। साल-साल भारत ही के मत्थे सूद भी चढ़ने लगा। लड़ाई चाहे संसार में अंग्रेजों को कहीं भी लड़नी पड़ी तो किसी-न-किसी तरह वादरायण-सम्बन्ध जोड़कर उसका खर्च भी भारत की जागीर पर लादा गया। रेलें निकलीं तो मुनाफा विलायत गया और टोटा भारतीय जागीर को सहना पड़ा। इस तरह पार्लमेंट के राज ने भारत की जागीर को और भी अधिक निठुराई से चूसना शुरू किया। भूमि और नमक के ऊपर कड़े-से-कड़ा महसूल लगने लगा।

संवत् १९३२ में स्वर्गीय लार्ड सैलिस्बरी भारत-मंत्री थे। उन्होंने उसी साल अपनी एक रिपोर्ट में इस प्रकार लिखा था—

“भारतीय राजस्व-पद्धति के बबलने की जहां तक गुंजाइश है, वहां तक इस बात की भारी जरूरत है कि किसान को जितना देना पड़ता है उससे कुछ कम ही, कुल देश के राजस्व के नाते वह दिया करे। नीति की ही दृष्टि से यह कोई किफायत की नीति नहीं है कि राजस्व की प्रायः सारी मात्रा उन देहातों से ही निकाली जाय, जहां पूंजी अत्यन्त मंहगी है, और उन शहर के हिस्सों को छोड़ दिया जाय, जहां धन बेकार पड़ा हुआ है, और ऐशो-आराम

में बर्बाद होता है। भारत के सम्बन्ध में तो बड़ी हानि पहुँचाई जाती है, क्योंकि वहाँ से मालगुजारी का इतना बड़ा अंश बदले में बिना कुछ मिले हुए देश के बाहर चला जाता है। जब भारतवर्ष का लोहू बहाना ही है, तब नशतर उन हिस्सों में लगाना चाहिए जिनमें लोहू जमा हो, या कम-से-कम काफी हो। उन अंगों में नहीं लगाना चाहिए, जो लोहू के बिना दुबले और कमजोर हो चुके हैं।”

लार्ड सैलिसबरी की चेतावनी पर कोई ध्यान नहीं दिया गया। वही पुरानी कहानी बार-बार दोहराई जाती रही। हर बीसवें और तीसवें बरस बन्दोबस्त होता रहता और हर नये बन्दोबस्त पर मालगुजारी बढ़ती ही रही। कहने को तो लगान की आधी ही मालगुजारी ली जाती है, परन्तु असल में तो बम्बई और मद्रास में इससे तो बड़ी ही रहती है। मालगुजारी में और कई तरह के महसूल भी जोड़ दिये गए हैं, जिनको बढ़ाने में सरकार को तनिक भी संकोच नहीं होता। संसार में कौन ऐसा देश है जिसके धन का इस निटुरायी से शोषण हो और तब भी उसकी खेती बरबाद न हो जाय। भारत के किसान थोड़े में गुजर करने वाले होते हैं; परन्तु तो भी वे दरिद्र हो गए हैं, खोखले हो गए हैं और सदा दुर्भिक्ष और भूख की भयानक सूरत उनके द्वार पर रहती है। श्री रमेशचन्द्रदत्त लिखते हैं: -

“घर के देने के नाम से भारत की सारी आमदनी का चौथाई हिस्सा हर साल इंगलिस्तान चला जाता है। अगर उसके साथ वह धन भी जोड़ लिया जाय, जो यहां के विलायती अफसर हर साल अपने वेतन से बचाकर इंगलिस्तान भेजा करते हैं तो यह रकम तीस करोड़ से कहीं अधिक हो जाती है। संसार का सबसे बड़ा धनी देश संसार के सबसे दरिद्र देश से यह धन चूसने की बेहयाई करता है। आदमी पीछे १२६०) साल कमाने वाले उन लोगों से आदमी पीछे ७) मांगते हैं, जो लोग आदमी पीछे ३०) साल कमाते हैं। यह सिर पीछे ७।।) रुपया जो भारत के लोगों से अंग्रेज लोग लेते हैं, भारत को दरिद्र कर देता है और इस तरह भारत में अंग्रेजों के व्यापार को भी हानि पहुँचती है। इस देने से अंग्रेजी

व्यापार और व्यवसायों को कोई लाभ नहीं पहुंचता, परन्तु तो भी भारत के शरीर से लगातार लोह की अदृष्ट धारा बहती चली जाती है।”

यह बात बिल्कुल सच है। संवत् १९५७ में भारत से मालगुजारी की सारी आमदनी सवा छब्बीस करोड़ रुपये हुई थी। घर के देने के नाम से साढ़े पच्चीस करोड़ उसी साल विलायत भेजे गए थे। यह तो साफ जाहिर है कि धरती की लगभग सारी आमदनी एक-न-एक ढङ्ग से विलायत चली जाती है। विलायती अफसर अपनी तनख्वाह की वचत जो भेजते हैं, वह इससे अलग है। प्रजा से जो कर लिये जाते हैं, वह यदि देश में ही खर्च किये जाते, जैसा कि संसार के सब देशों में होता है तो वह रकम प्रजा में ही फैलती। पेशे और व्यवसाय और खेती को बढ़ाती और किसी-न-किसी रूप में प्रजा का ही धन बढ़ाती। देश के बाहर निकल जाने पर एक कौड़ी भी देश के काम में नहीं आती।

रानी विक्टोरिया का राज ६४ वर्ष के लगभग चला। इतने समय में भारतवर्ष पर अंग्रेजों का फौलादी पंजा बराबर जकड़ता गया। महसूल बढ़ते गए। करों का भार अन्त में देश की दरिद्र प्रजा के ही सिर पर पड़ता गया। नमक का महसूल दरिद्रों को अत्यंत खला, परंतु उसे बढ़ाने में हृदय-हीन विदेशी सरकार को कभी तरस न आया। विदेशी माल ने बाजार को भर दिया। देश के आदमियों की दस्तकारी और कारीगरी का काम छिन गया। खेती से बची हुई घड़ियों में किसान खद्दर-सम्बन्धी काम किया करते थे। वह सारा काम छिन गया। साल में ६ महीने से लेकर ३ महीने तक किसान बिल्कुल बेकार रहने लगे। पछाहीं रोजगार की कठिन चढ़ा-ऊपरी ने यहां के एक रोजगार के बाद दूसरे रोजगार को चौपट कर दिया। कच्ची धातुओं से पक्की धातु बनाना, खानों की खुदाई, लोहे आदि की ढलाई के काम बंद हो गए। नमक बनाने वाली एक जाति नोनिया थी, जिनका काम नमक और शोरा तैयार करना था। यह जाति तो बिल्कुल बे-रोजगार हो गई। नोनिये कभी-कभी कुआँ खोदने का काम करते हैं। अधिकांश लोग मोटी मजूरी करने लगे। कोष्ठी, बुनकर, कोरी, जुलाहों का रोजगार मारा गया। बढ़ई, लुहार आदि

शिल्पी अपनी ऊँची कला भूल गए। सूत कातने को अत्यन्त प्राचीन कला इस कठिन चढ़ा-ऊपरी से नष्ट हो गई। लोगों ने चरखे उठाकर घरों पर फेंक दिए, मचानों पर डाल दिए या लकड़ी की जगह चूल्हों में जला दिए। लाखों की गिनती में बुनकर आदि कारीगर जब बेकार हो गए तो उनका जहाँ सींग समाया वहीं चले गये। जिनसे हो सका, खेती करने लगे, अनेक मोटी मजदूरी से ही पेट पालने लगे। गुजरात के हजारों बुनकर भंगी का काम करने लगे। हथियार, बारूद आदि का बनना एकदम बन्द हो गया। इधर पैसे इतने सस्ते कर दिये गए कि जरूरत की सारी चीजें अत्यंत मँहगी हो चलीं।

२. पैसे की माया

पैसों के भाव की कमीवशी करके विक्टोरिया के राज के पिछले २५ वर्षों में भारत की विदेशी सरकार ने शकुनी का कुटिल और निर्दय खेल खेला। भारत की दरिद्र और मोहग्रस्त जनता इस कुटिलता को कैसे समझ सकती थी? समझती भी तो कर क्या सकती थी? सरकार बारंबार नया बन्दोबस्त कर के मालगुजारी बराबर बढ़ाती गई और किसानों को लाचार होकर ज्यादा-ज्यादा पैसा देना पड़ने लगा। पहले उसको थोड़ा पैसा जुटाने के लिए बहुत अनाज देना पड़ता था, यह उसे खलता था। सरकार ने पैसे का अधिक प्रचार करके एक निशाने से दो शिकार मारे। एक तो अपनी-अपनी आमदनी बढ़ाई और दूसरे किसानों में जो असंतोष फैलता गया उसपर परदा डाला। किसान पैसे की माया में फांसे गए। अंग्रेजों ने पैसे को कुछ थोड़ा सस्ता कर दिया। किसानों ने देखा कि पैसा बहुत सस्ता हो रहा है, अनाज दे-दे, लगे पैसे जुटाने ! जब पैसे इकट्ठे होने लगे तब महीन और चमकदमक वाले कपड़े, खिलौने, लम्प लालटेन, तसवीरें, इत्र, सुगंध, फुलेल और भांति-भांति की विदेशों की बनी शौकीनी चीजें उन्हीं पैसों के बल पर खरीदने लगे और दरिद्र किसान शौकीन रईसों की नकल करने में अपनी बड़ाई मानने लगे, जो शहर के बच्चे रूखी रोटी और नमक का कलेवा करते थे, और नंगे पांव लंगोटी बांधे पढ़ने या काम करते जाने में संकोच नहीं करते थे, वही मांग काढ़ने, बाल संवारने, फंशन

बनाने और रईसों की सी लम्बी-ढीली धोती बाँधने लगे। यह सब शौकीनी की चीजें विलायती चल गईं, जो अनाज से नहीं मिलती थी। इनके लिए पैसों की बहुत जरूरत पड़ी। फिर शादी, ब्याह, मुँडन, छेदन की तरह गिरस्ती में आए दिन हाँसले बढ़ने लगे। चढ़ा-ऊपरी होने लगी। बेकार खर्चा बढ़ गया। अब हरेक को पैसों की लत लग गई। अनाज देकर अब सौदा मिलना मुश्किल हो गया। सुई, डोरा, नमक, हल्दी, सूत, रुई, सब तरह की जरूरी चीजें जो अनाज देकर मिलती थीं, पैसे पर मिलने लगी।

मुसलमानों के राज में किसान जो चाहता था, मालगुजारी में दे सकता था, चाहे अनाज दे, चाहे रुपया। विदेशी सरकार ने देखा कि अनाज लेने में भ्रंश है, और जब पैदावार मारी जायगी तब तो घाटे में रहेंगे। इसलिए मालगुजारी में अनाज लेने की रीति उठा दी गई। फिर भी जमींदार असामियों से अक्सर लगान में अनाज का अंश ले लिया करते थे। सरकार की नीति से यह भी चलने न पाया। जब जमींदारों से मालगुजारी के रुपये लिये जाने लगे तो उन्हें भी अनाज के बदले रुपया लेने में सुभीता पड़ा। मालगुजारी और लगान की दरें ठहराई गई। ठहराई हुई रकम क़िस्तों में वसूल की जाने लगी। अब जमींदार या राजा का महसूल अनाज की पैदावार पर नहीं रहा, खेत में अनाज उपजे चाहे न उपजे; पर राजा और जमींदार अपना महसूल बिना लिये नहीं रहते। किसान चाहे भूखों मर जाय; पर उसे लगान की रकम देनी होती थी। इसमें पैसे वालों की और भी बन आई थी। साहूकारों ने टका रुपया और आना रुपया ब्याज लगाकर किसानों को चूसना शुरू कर दिया। किसानों को कर्ज लेने की बान पड़ गई और एक बार किसान ने कर्ज लिया, समझो कि खड़ा लुट गया। क्योंकि एक तो इतना भारी ब्याज ही देना पड़ता था, दूसरे ब्याज-पर-ब्याज लगाया जाता था। किसान की खेती-बारी धीरे-धीरे साहूकार के पास चली गई। इस तरह देश में जमींदार और साहूकार तो बसे और किसान उजड़ गए। कलकत्ता, बम्बई, कराची, हैदराबाद, मद्रास, लाहौर, अहमदाबाद, इन्दौर आदि बड़े-बड़े शहरों में उजड़े हुए किसान कुलीगिरी करने लगे और लाखों इसी तरह के बे-खेत और बे-घर

के मर्द-औरत गिरमिट की गुलामी करने के लिए मिरिच के देश, ट्रिनीडाड, फीजी आदि विदेशी टापुओं में चले गये। किसानों की सादगी और भोलेपन के कारण आरकाटियों को उनके बहकाने में बड़ी आसानी हुई। आरकाटी गाँव में आया और किसान का बड़ा हितैषी बनकर रहने लगा। दुखी किसानों को, जिनके खेत साहूकारों की ठगी के कारण चले गये थे, उसने बहकाना शुरू किया, “तुम हमारे साथ कलकत्ते चलो, हम तुम्हें ३) ६० रोज की मजदूरी दिला देंगे, मजे में खाना और बचाना, और रुपये जमा करके अपने खेत छोड़ा लेना। कुछ दिनों में तो तुम जमींदारी खरीद लोगे। यहां क्यों अपनी मिट्टी खराब करते हो। कलकत्ते जाने को खर्च नहीं है, तो किराया हम दिलवा देंगे। नौकरी चाकरी खर्च-वर्च हम सब कुछ दिलवा देंगे, मौज करो।” आरकाटी ने पैसों का जो जाल बिछाया, उसमें रोटियों को तरसने वाला किसान फंस गया। कलकत्ते जाकर गिरमिट लिखाकर सदा के लिए गुलाम बन गया। इन बेचारे किसानों में से अपने जीवन में हजारों में से कोई एक मुश्किल से जीते जी फिर अपनी मातृभूमि के दर्शनो के लिए लौट सका !

वे लौटे क्यों नहीं ? इसीलिए कि वे पैसे के मायाजाल में बेतरह फंस गए। पच्छाहीं सभ्यता वाले देशों में पैसा-रुपया बहुत सस्ता है। खाने-पीने और पहनने की चीजें बहुत महंगी हैं। कोई बाहरी लूटने वाला नहीं है, क्योंकि वहां के लोग आप ही कल-बल से जगत को लूटते रहते हैं। इसी से वे धनवान हैं। वे तीन-तीन रुपये रोज मजूरी भी देते हैं। हमारे दरिद्र किसान उनके यहां मजूरी करने लगे तो उन्हीं की तरह खाने-पीने भी लगे। अपने देश में जैसा खाते थे उसमें मान लो कि चारों आने भी खर्च हो जाते थे तो भी चार आने रोज की मजूरी करने वाला कारीगर घाटे में नहीं रहता था, क्योंकि उसका अपने घर-का-घर होता था, खेती-बाड़ी भी होती ही थी। परन्तु वहां के तीन रुपये यहां के चार आने से ज्यादा कीमत नहीं रखते, क्योंकि वहां पैसा सस्ता है और सब चीज महंगी है। वहां के असुरों की बुरी लतें भी लग जाती हैं। तीन रुपये में दो-ढ़ाई रुपये रोज तो खर्च ही हो जाते हैं, बचत बहुत कम है। फिर जब वह गुलामी से छूटता है तो जो कुछ बचाया

होता है वह इतना ज्यादा नहीं है कि अने-जाने का भारी खर्चा सहकर भी इतना बच जाय कि अपने लिए भारत में खेत खरीद ले। वह अभाग्य इस देश में किस बिरते पर लौटेगा? यहां विदेशी सरकार ने पैसों का जो मायाजाल बिछाया, उसमें फंसाकर जमींदार ने किसान को चूसा, साहूकार ने किसान को चूसा और जब उसमें खून नहीं रह गया, जब वह बिलकुल बे-घर-बार होकर बरबाद हो गया, तब उसकी बची हुई भूखी हाड़ की ठठरी को आरकाटी ने रेल का किराया और भोजन देकर मोल ले लिया। अपने भाई को पैसे लेकर राक्षसों के हाथ बेच दिया। यह सब विदेशी लुटेरों के लिए किया गया। जानकर नहीं अनजान में, और पैसों के माया-मोह में फंस कर। जिसके खेती-बारी, जगह-जमीन नहीं रह गई, और रगों में खून भी नहीं रहा, वह बेचारा इस देश में रहकर सूखी ठठरी में प्राणों को किस सहारे रखता।

यह तो कथा हुई सबसे नीची श्रेणी के लोगों की, जो खेती भी करते थे और मजूरी भी करते थे। जो उनसे अच्छे थे और भूखों नहीं मरते थे, वे भी पैसों के मायाजाल में फंसकर बरबाद हुए। ये लोग अपने को ऊंची जाति समझते थे। इनकी मोटी समझ में जो भी ज्यादा खर्च करे वही बड़ा इज्जतदार समझा जाता। इसीलिए यह अपने को समाज में ज्यादा इज्जतदार सिद्ध करते रहे। इसमें उन्हें रुपयों की जरूरत पड़ा करती थी। राली ब्रदर्स के एजेंट फसल तैयार होने के पहले से ही घूमा करते थे। राली ब्रदर्स विलायत का एक भारी व्यापारी है जो लाखों मन अनाज भारत से खींच ले जाता है। इसके कारिंदे रुपया लेकर गांव-गांव घूमते हैं, खड़ी फसल कूत करके खरीद लेते हैं। या नाज का भाव पहले से ठहरा कर किसान को पहले रुपया दे देते हैं, और सस्ता अनाज और रुपये का सूद किसान से वसूल कर लेते हैं। पैसों की माया में पड़कर किसान अपने खाने के लिए काफी अनाज तक नहीं रखते। यह देखकर कि रुपया ज्यादा मिलेगा, भूखों मरकर भी अन्न बेच डालते हैं। यह खूब जानते हैं कि पैसों से पेट नहीं भरता, फिर भी पैसों पर लट्टू हो रहे हैं।

हमारे देश में पैसों की माया में फंसकर अनावश्यक चीजों की खेती अगर

न की जाती और पहले की तरह अनाज और कपास का ही अधिकार खेतों पर रहता तो भी हमारी दरिद्रता इतनी अधिक न होती। हमारे किसान पैसों की माया में फंसकर विदेशी सरकार से दादनी लेने लगे, और खेतों से जहाँ अमृत उपजाते थे, जहर बोने और उपजाने लगे, पोस्त की खेती करके अफीम बेचने लगे, तम्बाखू की खेती करके देश में जहर फैलाने का उपाय करने लगे। तम्बाकू और अफीम ने किसानों को मोह में फंसा कर कहीं का न रक्खा। ताड़ी शराब से लेकर गांजा, भंग, चरस, आदि जितनी नशीली चीजें हैं, सबसे विदेशी सरकार को आमदनी होने लगी। इसलिए इन सब चीजों का प्रचार किया गया और किसान लोग पैसे की माया में फंसकर उस महापातक के काम में भी पूजीपतियों की मदद करने लगे। पैमे की माया ने किसान को बरबाद कर डाला।

पैसे की माया अपार है। पंसा अंग्रेजों का देवता है, असुरों का परमात्मा है। उसकी माया में जिसे देखो वही फंसा हुआ है। किसान का तो सारा रोजगार पैसे ने छीन लिया है। बारीक, चिकना, चमकीला, सस्ता मलमल देख कर किसान लट्ट हो गया। मोटा खट्टर उसके बदन को चुभने लगा। कारिदे ने ज्यादा पैसे देकर कपास की फसल खरीद ली। उसने भी खुशी से बेच दिया। सोचा कि “इन्हीं पैसों से महीन मलमल खरीद लूंगा। ओटने, धुनने कातने, बुनने की मेहनत से बच जाऊंगा और इन्हीं से महीन कपड़ा भी मिल जायगा। मेरे घर की औरते बारीक सूत नहीं काततीं।” इस तरह जो पैसा विलायतने अनाज और कपास के लिए किसान को दिया था, वही पैसा बारीक कपड़ा पहना कर फिर लौटा लिया। देखो, पैसे की माया में डाल कर किसान को कैसा बेवकूफ बनाया! किसान के घर में दरिद्रता का वास हो गया। चरखा, चक्की और रई का चलना बन्द हो गया। चीनी का रोजगार, पटसन, सन, सूत, ऊन की कताई बुनाई का रोजगार उनके हाथ से छिन गया। देश के लाखों बुनकर, कोली जुलाहे बेरोजगार हो गए। जब कोई रोजगार न रहा, लाचार हो, कुली, भंगी, डोम आदि का काम करने लगे या विदेश चले गए। जिन लोगों को खेत मिल सके वे खेती करने लगे, या खेती

मजूरी दोनों करने लगे। इस तरह खेती करने वाले बहुत बढ़ गए और उनके पेट का भी बोझ खेती के ही कंधों पर आ पड़ा।

अब खेत की जमीन बढ़ानी पड़ी। वह कहाँ से आये? गांवों की गोचर-भूमि जो गऊ-बैलों के लिए छटी रहती थी वह खेती के काम में आने लगी। बेचारी गऊओं को उनकी मिल्कियत से निकाल बाहर किया गया। पैसों की माया ने उनकी रोजी छीन कर भी उन्हें कुशल से न रहने दिया। उनकी जान के लिए बड़ी-बड़ी कीमत लगने लगी। जीती गऊ का कम दाम मिलने लगा, पर उसकी लाश पर ज्यादा पैसे मिलने लगे। जीती गऊ का दाम १०) था, तो उसके चमड़े का दाम १३) मिलने लगा और मारी हुई का मांस और उसकी हड्डी का दाम अलग खड़ा होने लगा। पैसे की माया में फंसकर किसान ने अपना तन बेच दिया, घर-द्वार बेच दिया, अब उसने अपनी गो माता को भी बेच कर नरक का रास्ता साफ कर लिया। गोरी सेना को खिलाने के लिए हजारों गायें इसी तरह खरीद-खरीद कर काटी जाने लगीं। पैसे की माया ने न गोचर-भूमि रहने दी और न गोचर-भूमि के भोगने वालों को जीता छोड़ा। दही, दूध, घी पहले खास खाने की चीजें थी। यह आज अमीरों को भी जितना चाहिए उतना नसीब नहीं। पैसे की माया हमारे सामने की परसी थाली छीन ले गई। बच्चों के मुंह से दूध की प्याली हटा ले गई और नकली घी, रेशम, चीनी, आटा, आदि सभी चीजें उसने फैलाई। उसने हमें हड्डी, चरबी, मांस खिला और चबवा कर छोड़ा। एड़ी से चोटी तक हमें हिंसा का अवतार ही नहीं बल्कि भूखा, नंगा राक्षस बना डाला।

हिंसा करनेवालों ने पता लगाया है कि इन्हीं पैसों की माया में फंसकर आज किसान के सिर पर सात-आठ अरब रुपयों का कर्जा है। जबतक किसान इस भयानक कर्ज के बोझ से पिस रहा है तब-तक गांव का सुधार क्या होगा? जब तक ग्यारह करोड़ किसान साल में नौ से तीन महीने तक बेरोजगार रहेंगे, तबतक हमारा अन्न दूसरे खाते रहेंगे और हम मुंह ताकते रहेंगे। जबतक हम अपने तन ढकने के लिए मंचेस्टर के मुहताज रहेंगे, तबतक गोरों का पेट भरने के लिए हमारा गोधन बरबाद होता रहेगा। जबतक हम

ठंडे रहेंगे और हमारे हृदयों में अपने को पश्चिमी सभ्यता की गुलामी और पैसों के मायाजाल से छुटकारा पाने के लिए आग न लग जायगी, तबतक गाँवों का सुधार न होगा।

भारत में जहाँ-जहाँ रैयतवारी ढंग हैं, वहाँ तो सरकार से सीधा सम्बन्ध है। पर जहाँ-जहाँ जमींदारी की प्रथा है वहाँ बीच में जमींदार के पड़ जाने से किसान के साथ जमींदारों से रगड़ा-भगड़ा लगा रहता है। बटवारे हकीयत आदि के लिए आपस के भगड़े भी लगे रहते हैं। आये दिन नोन-सत्तू लेकर खेती के उपजाऊ कारवार को छोड़, अपना लाख हरज करके, अपने भूखे बीबी-बच्चों को बिलखते रखकर बेचारे किसान को बीसों कोस की दौड़ लगानी पड़ती है। वकीलों-मुस्तारों के दरवाजों पर ठोकरे खानी पड़ती हैं। बेचारे को आधे पेट खाने को नहीं मिलता, पर वकीलों-मुस्तारों, अहलमदों, पेशकारों और अदालत के अमलों को और अनगिनत ऐसे ही रिश्वतखोरों को, कर्ज ले कर, खनाखन रुपये गिनने पड़ते हैं। नालिश करते ही रसूम तलबाना वगैरा के लिए खर्च करना पड़ता है और अंत में फल यह होता है कि हारने वाले और जीतने वाले दोनों के दोनों कर्ज से लद जाते हैं, और जायज और नाजायज खर्च दोनों मिला कर मुकदमा जीतनेवाला भी घाटे में ही रहता है। पुराने जमाने की पंचायतें इसीलिए उठ गई कि उनके अधिकार विदेशी सरकार ने छीन लिये और देहातों के कोने-कोने तक अपना अख्तियार फैलाने के लिए गाँव वालों को कचहरी के अर्थात् मूड़ने वालों के मातहत कर दिया।

इसी तरह मिलों और कारखानों में जहाँ मजूरों और मालिकों का सम्बन्ध है, वहाँ भी पैसे की माया अजब खेल खिला रही है। पैसा सस्ता हो जाने से सारी चीजें महंगी तो हो गई; पर मजूरी उसी हिसाब से नहीं बढ़ी। हम यह बात और जगह दिखा आये हैं। पैसे की माया के कूटने वाले बेलट के नीचे दरिद्र मजूर और किसान कंकड़ और पत्थर के टुकड़ों की तरह पिस गए और पैसे के पुजारियों की ठंडी सड़क बन गई।

अभी कुछ ही बरस हुए कि ब्रिटिश सरकार की ओर से पंचायतें बनने के लिए कानून बना; परन्तु इन पंचायतों में वह बात कहाँ है, जो पुरानी

पंचायतों में थी। पंचायतों के प्रकरण में हम देखेंगे कि पहले कैसी पंचायतें होती थीं, आज ब्रिटिश सरकार ने जो पंचायतें बनाई हैं वे कैसी हैं और जैसी पंचायतों से हमारे देश का कल्याण हो सकता है, वैसी पंचायतें कैसे कायम हो सकती हैं ?

३. आज कैसी दशा है ?

महारानी विक्टोरिया के राज में भारत की जितनी दुर्दशा हो चुकी थी, वह यूरोप के महासागर तक बढ़ती ही गई और युद्ध के बाद तो वह इस हद तक पहुँच गई कि भारत के अत्यन्त शांत, अत्यन्त सहनशील और अहिंसा के भक्त भिक्षा मांगने तक के विनयी भारतवासी अत्याचारों से इतने व्याकुल हो गए कि उन्होंने स्वतन्त्रता का गाँत निरस्त्र युद्ध आरम्भ कर दिया। विदेशी सरकार मुद्दत से इस बात को समझती थी कि जितने भारी अत्याचारों को भारतवासी चुपचाप सह रहे हैं, उनको संसार की सभ्यता के इतिहास में किसी भी देश ने बर्दाश्त नहीं किया है। इसी आतंक से संवत् १९१४ के असफल भारतीय स्वातंत्र्य युद्ध के कुछ बरसों बाद ही सारे ब्रिटिश भारत के हथियार कानून बनाकर अपने कब्जे में कर लिए। एक तरह से सारे देश को निहत्था कर दिया और पासपोर्ट के कानून से भारत के अन्दर बाहर से आना या भारत से बाहर को जाना अपने कब्जे में कर रखा है।

भारतवर्ष एक बहुत भारी किला है, जिसके भीतर अंग्रेज नवाबों की जागीर है, जहाँ करोड़पति से लेकर भिखमंगे तक उनके कैदी हैं। इन कैदियों की कई श्रेणियाँ हैं, जिनमें पहली श्रेणी में बड़ी-बड़ी रियासतों के शासक महाराजा, राजा, नवाब, ताल्लुकेदार और भारी-भारी उपाधियों वाले जमींदार आदि हैं। उसके बाद बीच की श्रेणी के लोग हैं; परन्तु इन दोनों की गिनती बहुत थोड़ी है। सैकड़ा पीछे निन्यानवे वे दरिद्र कैदी हैं, जिन्हें इज्जत के लिए मजदूर और किसान कहते हैं। उन बेचारों को भर पेट मिट्टी मिली हुई वे रोटियाँ और कीचड़-सी वह दाल और घास का वह भलरा भी भर पेट नसीब नहीं होता, जो इस बड़ी जागीर के मालिक लोग डाकुओं,

चोरों, हत्यारों, लठबाजों और अत्याचारी गुंडों को इस किले के भीतर की जेलों में खुशी से देते हैं। क्या संसार में ऐसी दुर्दशा किसी सभ्य देश की सुनी गई है ?

इस संसार के अनुपम और विशाल किले के भीतर इन कैदियों की जो दशा है, अगर उसका पूरा और सच्चा चित्र इन्हीं के हृदयों के सामने रक्खा जाय और उन्हें उनके कष्टों की गम्भीरता का पूरा ज्ञान करा दिया जाय तो शायद उसका फल अत्यन्त भयंकर हो, जिसका अनुमान करना बड़ा कठिन, है। भूल और अज्ञान ऐसे मौकों पर बहुत बड़ी चीज है, उससे लाभ भी है, और हानि भी। भूल और अज्ञान की बेहोशी में भारतवर्ष को नश्वर-पर-नश्वर लगते जाते हैं, लार्ड सैलिस्बरी की राय के अनुसार अंधाधुन्ध खून का चूसा जाना जारी है। इस बेहोशी को कायम रखने के लिए भारत के रहने वाले सौ में चौरानवे आदमियों को सब तरह की शिक्षा से विदेशी सरकार ने अलग रखा है, और कहा यह जाता है कि ग्राम तालीम पहले कभी दी ही नहीं जाती थी। पहले के किसान खेती के काम में जितने होशियार थे उसकी गवाही में पुराने विदेशी लेखक लाख-लाख मुंह से सराहना करते थे। परन्तु गिरमिट की गुलामी ने हमारे यहां से कुछ तो खेती की कला में कुशल मजूरों और किसानों को विदेशों में भेज दिया और अधिकांश भारी लगान में कर्ज आदिके बोझ से लद कर उजड़ गए। नये ढंग की मुकदमेबाजी में फस-फस कर मर-खप गए, और महामारी-हैजा आदि दुर्भिक्ष के रोग उन्हें उठा ले गए। अकाल बारबार पड़ने लगे और इतनी जल्दी-जल्दी पड़े कि भारतवर्ष में आज अकाल सदा के लिए ठहर गया है। इन सब बातों ने भारत के किसानों की खेती की कला को चौपट कर दिया। जब बेटे को सिखाने का समय आया, बाप चल बसा। भाई-भाई में मुकदमेबाजी हुई, बंटवारे में चार-चार बीघे खेत लेकर अलग हो गए। अब हर भाई को अपना-अपना हल-बैल अलग रखना पड़ा। उधर मुकदमेबाजी ने घर की सम्पत्ति को स्वाहा कर दिया, इधर साहूकार के दिये हुए ऋण ने ब्याज और सूद-पर-सूद मिला कर सुरसा की तरह अपना मुंह बढ़ाया, और अन्त में रहे-सहे वह चार बीघे हल-बैल

समेत निगल गया। घर-घर किसानों के यहां यही कहानी आज तक दोहराई जा रही है। गांवों का उजड़ना आज तक जारी है।

आज भारतवर्ष में बच्चों की मौतें जितनी ज्यादा होती हैं, संसार में कहीं नहीं होती। दरिद्रता के कारण मां-बाप न तो बच्चों को दूध दे सकते हैं, न उनके पालन-पोषण की ओर ध्यान देते हैं। बच्चों के होते समय न तो किसी तरह की सहायता पा सकते हैं और न सफाई रख सकते हैं। सफाई और तन्दुरुस्ती भी कुछ अंश तक धन के सहारे ही होती है। इसीलिए दरिद्रता और दुर्भिक्ष ने पहले रास्ता साफ करके रोगों के खेमे खड़े किये और जब मौत का पड़ाव बन गया तो यमराज ने आकर डेरे डाले। आज भारत-वासियों की औसत उम्र २८ बरस की हो गई है। जितने आदमी भारतवर्ष में मरते हैं, उतने संसार में और कहीं नहीं मरते। और देशों की हुकूमतें अपनी आबादी बढ़ाने की चिंता में रहती हैं, सुख-समृद्धि बढ़ाती रहती हैं और इन बातों के लिए जरूरत पड़ती है तो खून की नदियां बह जाती हैं। यहां की हुकूमत भी खून की नदियां बहाती है; परन्तु खून होता है भारतवासियों का, और नदियां बहाकर विलायत के सुख-समृद्धि को सींचती और बढ़ाती हैं। इस किले के महाप्रभुओं की यह मंशा नहीं है, कि कैदियों की ठठरियों में जो खून बने, वह उनके पास रह जाय। मांचेस्टर वालों को तो शायद इस बात में खुशी होगी कि भारत में मौतें ज्यादा होती हैं, और कफन की बिक्री अच्छी होती है।

हाथ-पैर के मजबूत और खेती के काम में कुशल किसान जब देश से एक बार उजड़ जाते हैं तो देश के संभालने में युगों का समय लग जाता है। भारतवर्ष की उजड़ी खेती को फिर से पहले की तरह अच्छी दशा में लाने के लिए अनेकों बरस लगेंगे, शर्त यह है कि सुधार के काम में भारत के लोग प्राणपण से लग जायें। विदेशी सरकार हमारी उन्नति के लिए अपने को बहुत चिन्तित प्रकट करती है; परन्तु यह दंभ-मात्र है। उसे वस्तुतः चिंता यह रहती है कि पैदावार घट कर हमारी आमदनी को न घटा दे।

आज भारतवर्ष में बेकारी का डंका बज रहा है। यह बात जगजाहिर

है कि खेती में कहीं भी बारहों मास के लिए किसान या मजूर को काम नहीं मिल सकता। बंगाल के फरीदपुर जिले को भारतवर्ष में आदर्श समृद्ध जिला बताते हुए जंक नामक एक सिविलियन लिखता है कि यहाँ का किसान तीन महीने की कड़ी मेहनत के बाद नौ महीने बिल्कुल बेकारी में बिताता है। 'अगर वह धान के सिवाय पटसन भी उपजाता है तो जुलाई और अगस्त के महीनों में उसे छः हफ्ते का काम और रहता है।'* इस तरह कम-से-कम साढ़े सात महीने बंगाल के किसान बेकार रहते हैं। श्री कैलवर्ट का† कहना है कि पंजाब के किसान ३६५ दिनों में अधिक-से-अधिक १५० दिन पूरी मेहनत करते हैं बाकी सात महीने बेकार रहते हैं। संयुक्त प्रान्त के लिए श्री इडाई का बयान है कि दो बार बोवाई, दो फसलों की कटाई, बरसात में—कभी-कभी निराई और जाड़ों में तीन बार सिंचाई—किसानों के लिए कड़ी मेहनत का काम इतना ही है—बाकी साल भर किसान बिल्कुल बेकार रहता है। बिहार और उड़ीसा के लिए श्री टाल्लेट्स और मध्यप्रान्त के लिए श्री राउटन भी ऐसा ही कहते हैं। श्री गिलबर्ट स्लेटर का कहना है कि मद्रास प्रांत में जहाँ एक फसल होती है वहाँ किसान को केवल पाँच महीने काम करना पड़ता है और जहाँ दो फसल होती है वहाँ कुल ८ महीने। इस तरह कम-से-कम चार महीने किसान को दक्षिण देश में बेकार रहना पड़ता है।‡ इस तरह भारतवर्ष भर में कम-से-कम चार महीने से लेकर नौ महीने तक किसान बिल्कुल बेकार रहता है। श्री ग्रेग ने भारत के पक्ष को अत्यन्त दबाकर औसत बेकारी कम-से-कम तीन महीने रखी है। अपने ही पक्ष में अटकल की ऐसी कड़ाई वर्तमान लेखक अन्याय समझता है। यह औसत

*J. C. Jack : The Economic life of a Bengal District, Oxford 1916, P. P. 39.

†Calvert's Wealth Welfare of the Punjab. PP. 245.

‡Prof. Gilbert Stater : Some South Indian Villages Oxford, University Press London p. 16 and Census Reports pp. 270, 271 and 274, for Bihar & Orissa, U.P. and C. P. respectively.

साढ़े छः महीने होता है। परन्तु समीक्षा की कड़ाई और हिसाब के सुभीते के लिए हम इसे छः महीना रखते हैं।

भारतवर्ष की खेती पर निर्भर करने वाली आबादी ७५ प्रतिशत के लगभग है। इसमें भी जो लोग खेतों पर मेहनत का काम करते हैं उनकी गिनती लगभग पौने ग्यारह करोड़ है। हम बिना किसी अत्युक्ति के यह कह सकते हैं कि यही पौने ग्यारह करोड़ आदमी औसत छः महीने बिलकुल बेकार रहते हैं। कड़े अकाल के दिनों में विदेशी सरकार सहायता के रूप में भारत के भुक्खड़ों से कसकर काम लेती है और दो आने रोज मजूरी देती है। हिसाब के सुभीते के लिए हम पौने ग्यारह करोड़ की जगह दस ही करोड़ लें और केवल एक सौ अस्सी दिनों की मजूरी दो आने रोज के हिसाब से रखें तो प्रति व्यक्ति साढ़े बाईस रुपये होते हैं। छः महीने में दस करोड़ आदमियों की मजूरी इस हिसाब से सवा दो अरब रुपये होती है, या सवा करोड़ रुपया रोजाना होती है। इन पौने ग्यारह करोड़ मनुष्य-रूपी मशीनों को बेकार रख कर विदेशी सरकार सवा करोड़ रुपये रोज और सवा दो अरब रुपये सालाने का घाटा कराती है। अगर इसे बेकारी का टैक्स समझा जाय तो भारतवर्ष को इस भयानक बेकारी के पीछे प्रति व्यक्ति सात रुपये के लगभग खोना पड़ता है। जिस आदमी की आमदनी साल में छत्तीस रुपये हो, वह क्या सात रुपये या अपनी आमदनी का पंचमांश खो देना सह सकेगा ?

संवत् १९७८ की मालगुजारी की रकम जो सरकार ने वसूल की, सवा अरब से कुछ अधिक थी। भारत की सारी आमदनी संवत् १९८१ की एक अरब अड़तीस करोड़ के ऊपर थी। भारत सरकार का कुल खर्च जो उस साल हुआ एक अरब साढ़े बत्तीस करोड़ से कम था। यही मदें विदेशी सरकार की आमदनी और खर्च की मदों में सबसे बड़ी है। बेकारी के कारण भारतवर्ष को जितना हर साल खोना पड़ता है, वह इनमें बड़ी-से-बड़ी मद का पौने दो गुने से ज्यादा है। यह तो किसानों की मजूरी की रकम का हिसाब रक्खा गया; परन्तु यही मजूर लोग काम करके जो माल तैयार करते हैं, वह उनकी मजूरी से कई गुना ज्यादा कीमत का होता

है। तैयार माल की कीमत अगर मजदूरी की दूनी भी लगाई जाय तो पौने सात अरब सालाना का घाटा होता है। हर साल पौने सात अरब का घाटा उठाने वाले किसान अगर कुल आठ ही अरब के कर्जदार हों तो यह कर्जा कुछ ज्यादा नहीं है। परन्तु जैसे संसार के किसी सम्य देश के किसान अपनी जिन्दगी के आधे दिन न तो इस तरह बेकार खोते हैं और न कई करोड़ की संख्या में पेट भर पत्थर बांधकर सो रहते हैं, और न इस तरह भयानक रूप से ऋणामुर के जबड़ों के बीच पिस रहे हैं।

इस भयंकर बेकारी का भयानक परिणाम भी देखने में आ रहा है खाली दिमाग में शैतान काम करता है। जिन लोगों को कोई काम नहीं है वे ज्यादातर हुक्का पीते हैं और तमाखू फूक डालते हैं। तमाखू का जहर हमारे समाज के अंग के रोये-रोये में फैल गया है। तमाखू आदर-सत्कार की चीज बन गई है। जो तमाखू खून को खराब कर देता है, हृदय और आंतों को बिगाड़ देता है, आख की रोशनी को खराब कर देता है, अच्छे खासे मर्द को नामर्द बना देता है, क्षय-रोग पैदा करता है और आदमी के जीवन को घटा देता है, उसी जहर की खेती कमाई करने के लिए नहीं तो अपना नाश करने के लिए किसान करता ही है, परन्तु वह इस तरहपर केवल अपने तन-मन को ही नहीं खराब करता, बल्कि अपने देश के धन का भी नाश करता है। अगर हम मान लें कि भारत के छत्तीस करोड़ प्राणियों में केवल आठ करोड़ प्राणी धेले की तमाखू रोज खाते, पीते, सूँघते और फूंकते हैं तो इस जहर के पीछे सवा छः लाख रुपये रोज फूक देते हैं। साल में तेईस करोड़ के लगभग तमाखू में खर्च कर देते हैं। ताड़ी और शराब की आमदनी से सरकार अर्धाधुध फायदा उठाती है, वह तो इसका खासा प्रचार करती है। रहे-सहे किसान इन जहरों के कारण उजड़ते जाते हैं। हमारे देश में लगभग बारह लाख एकड़ में तमाखू की खेती होती है। 'शैतान की लकड़ी' के लेखक ने तो अटकल लगाया है कि पचास करोड़ रुपये की तमाखू हमारे देश में खप जाती है। सन् १९२० ई. में सरकार को शराब से बीस करोड़ से ज्यादा की आमदनी हुई। अफीम से सन् १९१९-

२० में सरकार को ढाई करोड़ से अधिक आमदनी हुई। गांजा, भांग, चरस, चाय, काफी आदि नशे की चीजें भी बेकार किसान को तबाह कर रही हैं।

ये भुखड़ जिन्हें आधे पेट खाना भी नसीब नहीं होता, नशा किस-लिए सेवन करते हैं? भूखा आदमी पापी पेट को भरने के लिए लाचार होकर ऐसे काम भी कर डालता है, जिनके करने में उसे शर्म आती है। जब वह होश में रहता है तब भीतर वाला ऐसे कामों के करने में रुकावट डालता है; परन्तु शरीर का बाहरी काम कैसे चले? भुखड़ भीतर वाले की आवाज सुनना नहीं चाहता, इसलिए नशे से अपने को बेहोश कर देता है। भूखे बाल-बच्चे कष्ट से तड़प रहे हैं, कमाने वाला बाप उनके मुंह में अन्न नहीं रख सकता। जी तोड़कर मेहनत करता है, परन्तु मजूरी काफी नहीं मिलती। घोर अकाल के समय में भारत में काफी अन्न मौजूद रहता है, परन्तु दरिद्र भुखड़ के पास पैसे कहां हैं कि मोल ले सके। वह बेचारा चिन्ताओं से व्याकुल हो जाता है, तड़पते बाल-बच्चे देखे नहीं जा सकते, नशा उसे बेहोश कर देता है। इसीलिए वह किसी-न-किसी ढंग से अपने को बेहोश कर लेता है। पाप करने के लिए जिस तरह आदमी नशा पीता है, पाप कराने के लिए भी उसी तरह दूसरों को नशा पिलाता है। विदेशी सरकार अपने स्वार्थ-साधन के लिए इस विशाल किले के कैदियों को बेहोश रखने के लिए भांति-भांति से नशा पिलाती है। हमारे किसान नशे के पीछे भी बेतरह बरबाद हो रहे हैं।

गौओं से ज्यादा सीधा कोई पशु नहीं है; परन्तु चारा थोड़ा हो और गायें अधिक हों तो वह भी आपस में लड़ जायंगी। दरिद्रता की जैसी विकट दशा में हमारा देश है वह तो प्रकट ही है। खाने को थोड़ा मिलता है, और बेकारी हृद से ज्यादा है, तो उसका नतीजा भगड़ा-फसाद के सिवा कुछ नहीं हो सकता। यही बात है कि कोई गांव ऐसा नहीं है और किसी गांव में एक घर भी ऐसा नहीं है, जिसमें भगड़े-फसाद का बाजार गर्म न हो, जहां आये दिन लोगों में लट्ठबाजी न होती हो और फौज-दारी या दीवानी तक जाने की नौबत न आती हो। गांव का पटवारी

और चौकीदार और थाने के दरोगा, सिपाही हमेशा इसी फिक्र में रहते हैं कि कोई भगड़ा खड़ा हो और उनकी जेब गर्म हो। भगड़े में भगड़नेवालों का नुकसान-ही-नुकसान रहता है; क्योंकि सरकारी लोमड़ियां शिकार का वारा-न्यारा करती हैं। गांववालों में कचहरी की दलाली का रोजगार दरिद्रों की इस मुकदमेबाजी ने पैदा कर दिया है। जहां गांवों का मुखिया बिना एक कौड़ी के खर्च कराये सच्चा और शुद्ध न्याय कर देता था, वहां आज गांव के दलाल उकसा-उकसा कर उन्हें लड़ाते हैं, और भुक्खड़ों तक को अदालत के दरवाजे पर पहुँचा कर उनका सर्वस्व हर लेने में कोई कोर-कसर नहीं रखते।

४. गांव का सरकारी प्रबन्ध और लगान-नीति

गांव के प्रबन्ध के लिए सरकार की ओर से प्रत्येक गांव में मुख्यतः दो मुलाजिम रहते हैं; एक पटवारी और दूसरा चौकीदार। पटवारी को जमीन की नाप-जोख, खेतों का लगान और जमीन के बटवारे आदि का रेकार्ड रखना पड़ता है ताकि उससे गांव का पूरा हाल हकूमत को मिले। चौकीदार पुलिस की ओर से रहता है कि किसी तरह का उपद्रव हो तो वह उसकी खबर ऊपरी अफसरों को दे। विदेशी सरकार की वर्तमान लगाननीति को समझने के लिए 'टाइम्स' की 'इंडियन ईयर बुक' में जो लेख है, उसका सार यह है—

सरकार की जमीन के लगान-संबंधी नीति यही है कि जमीन की मालिक सरकार है और जमीन का लगान एक तरह से उसे मिलने वाला किराया है। सरकार इस बात को अनुभव करती है कि सैद्धान्तिक दृष्टि से इस व्याख्या पर आपत्ति की जा सकती है; पर वह कहती है कि सरकार और किसान के बीच अभी जो संबंध है उसको स्पष्ट करने के लिए यही शब्द उपयुक्त है। किसान अपनी जमीन की हैसियत के अनुसार सरकार को लगान देता है। लगान पर समय-समय पर पुनः विचार करने के लिए जो सरकारी कार्यवाही होती है, उसे सेटलमेंट या बंदोबस्त कहा जाता है। भारत में दो

सारा फायदा उसी को मिलता है। जहां नये बंदोबस्त में इस जमीन को किस वर्ग में रखा जाय, इसपर पुनः विचार करके, यदि किसान का लाभ नहर, रेल जैसी सार्वजनिक लाभ की वस्तु के कारण अथवा बाजार-भावों में वृद्धि होने के कारण बढ़ गया हो, तो उस जमीन को नये वर्ग में डाला जा सकता है। पर सरकार ने इस सिद्धांत को अब मान लिया है कि किसी खास तरीके पर कोई किसान अगर अपनी जमीन की उपज बढ़ा लेता है, तो उसपर लगान न बढ़ाया जाय। इस विषय में उसने कुछ नियम भी बना लिया है।

लगान की तादाद

भारत में जमीन पर जो लगान लिया जाता है, उसकी एकनिश्चित दर नहीं है। वह स्थायी बंदोबस्त वाले सूबों में एक प्रकार का है तो अस्थायी बंदोबस्त वाले सूबों में दूसरे प्रकार का। फिर जमींदारी तथा रयतवारी प्रदेशों में और भी अलग-अलग। रयतवारी में भी जमीन की किस्म उसके अधिकार आदि के अनुसार न्यूनाधिक है। बंगाल में लगभग १६,००,००,००० रुपये जमींदार लोग अपनी रयत से वसूल करते हैं। चूंकि वहां स्थायी बंदोबस्त हो गया है, इसलिये, सरकार उसमें से केवल ४,००,००,००० रुपये लेती है। अस्थायी बंदोबस्त वाले प्रदेशों में जमींदारों से, अधिक-से-अधिक लगान का ५० फी सदी सरकार वसूल करती है। कहीं-कहीं तो उसे प्रतिशत ३५ बल्कि २५ ही पड़ता है; पर यह निश्चित है कि वह ५० फी सदी से कभी अधिक नहीं होता। रयतवारी-प्रणाली में सरकार का हिस्सा कितना होता है यह ठीक-ठीक बताना जरा कठिन ही है; पर जमीन की पैदावार का अधिक-से-अधिक पांचवां हिस्सा सरकार का भाग समझ लिया जाय। इससे कम तो कई प्रकार के रेट मिलेंगे; पर इससे अधिक तो कहीं नहीं हैं।

लगभग सोलह सत्रह वर्ष पहले भारत के कुछ प्रतिष्ठित लोगों ने भारत सरकार को अपने वस्तुतः से इस आशय की एक दख्खास्त भेजी थी कि वह जमीन की उपज के पांचवें हिस्से से ज्यादा लगान

कभी न ले। उस समय लार्ड कर्जन वाइसराय थे। उन्होंने इस निवेदनपत्र पर, तथा अन्य 'रिप्रेजेंटेशंस' के जवाब में अपनी लगान-नीति के बचाव में एक प्रस्ताव प्रकाशित किया था। उसमें लिखा था कि "सरकार को जितना लगान लेने को अभी कहा जा रहा है, उससे तो इस समय वह बहुत कम ले रही है। प्रत्येक प्रांत में औसतन लगान इससे कम ही है।" यह प्रस्ताव तथा उन प्रांतीय सरकारों के बयान भी, जिनपर यह कथन आधार रखता था, बाद में पुस्तकाकार छपा दिए गये थे। आज भी सरकार को लगान-नीति के नियमों को प्रकट करनेवाली यही पुस्तक प्रामाणिक समझी जाती है। उपर्युक्त प्रस्ताव में अनेक सिद्धांत निश्चित किये गए हैं। उनमें से मुख्य-मुख्य बातें नीचे दी जाती हैं—

लगान-नीति

“(१) जमींदारी प्रदेशों में सरकार की नीति की कुजी यही है कि धीरे-धीरे लगान कम किया जाय। अधिक-से-अधिक ५० प्रतिशत मालगुजारी ली जाय। इस समय तो यदि गलती होती है तो लगान कम तो वसूल किया जाता है, अधिक नहीं।

(२) इन प्रदेशों में जमींदारी के अत्याचारों से काश्तकारों को बचाने के लिए कानून बनाकर या अन्य तरह से हस्तक्षेप करने में सरकार कभी हिचकिचाती नहीं।

(३) रयतवारी प्रदेशों में बंदोबस्त की मीयाद दिन-ब-दिन अधिक बढ़ाने की कोशिश हो रही है। नये बंदोबस्त के समय की जो-जो कार्यवाहियां होती हैं उनको अधिक सरल और सस्ती बनाने की नीति है।

(४) जमीन-संबंधी स्थानीय कर बहुत ज्यादा और भारी नहीं हैं।

(५) जैसा कि कहा जा रहा है, जमीन से इतना कर वसूल नहीं किया जा रहा है कि उसके कारण लोग दरिद्र और कंगाल हो रहे हों। उसी तरह अकालों का कारण भी लगान-नीति नहीं है। तथापि सरकार ने आगे के कार्य की सुविधा के लिए कुछ सिद्धांत कायम कर लिए हैं।

(अ) अगर लगान में इजाफा करना है तो वह क्रमशः और धीरे-धीरे किया जाय ।

(ब) लगान वसूल करने में कुछ उदारता से काम लिया जाय । मौसम तथा किसानों की दशा को ध्यान में रखते हुए, कमी-कभी लगान वसूल करने की तारीख बढ़ा दी जाय और लगान माफ भी कर दिया जाय ।

(इ) स्थानीय कठिनाई के समय लगान बड़े पैमाने पर घटाया भी जा सकता है ।”

ऊपर की प्रकाशित नीति हाथी के दिखाने के दांत हैं, खाने के दांत और ही हैं । इस अवतरण से तो ऐसा जान पड़ता है कि प्रजा का दरिद्र होना, बार-बार अकाल का पड़ना, करोड़ों की संख्या में भारतवासियों का मरना सबकुछ भारतवासियों के अपने कसूर से है । लगान और मालगुजारी की सारी शिकायतें भूठ हैं । उसका एक अच्छा-सा उदाहरण है कि गवर्नमेंट कहती तो है किहम-मुनाफे का ज्यादा-से-ज्यादा आधा लेते हैं; परन्तु मातार ताल्लुका (गुजरात) में लगान का ३.२६ गुना कर लगाया गया । दो-एक गांवों में ५१ प्रतिशत था; परन्तु बाकी सब गांवों में ७१ से लेकर ९४ प्रतिशत तक कर लगाया था ।* जो बातें इस सम्बन्ध में सरकार के ही बताये हुए अंकों के आधार पर हम पहले दिखा आये हैं उनके ऊपर इस अवतरण से कैसी सफेदी हो जाती है । ज्यादा टीका-टिप्पणी की जरूरत नहीं है । सारांश यह है कि इस सफेदी के होते हुए भी अत्यन्त कठोर और किमी प्रकार न मिटने वाला सत्य यह है कि संसार में कोई देश न तो भारत-सा दरिद्र है और न ऐसे भारी भूमि-कर की चक्की में पिस रहा है । इस भारी कर के बोझ को सहना भी हमारे देश के लिए लाभकर होता, अगर यह धन हमारे देश के भीतर ही खर्च किया जाता । एक तो भारी कर का अत्याचार था ही, दूसरे उससे भी कहीं भारी अत्याचार यह है कि देश का धन बाहर चला जाता है । इसपर बड़े भोलेपन से यह जवाब दिया जाता है कि आखिर

* "An Economic Survey" Young India, 1929, page 389 para 6.

हकूमत का खर्च और सेना का खर्च कैसे चले ? दरिद्र किसान इस जवाब से कभी संतुष्ट नहीं हो सकता । ‘अगर आप किफायत से खर्च नहीं कर सकते तो आपमें बंदोबस्त की योग्यता नहीं है । आपने हमसे कब पूछा कि हम इतना खर्चीला बंदोबस्त करें या न करें । हमें आपकी सेवा नहीं चाहिए । आपके लुटाऊ कलेक्टर और कमिश्नर नहीं चाहिए । हमें तो चाहिए रोटियां, जिनके लिए हम तरस रहे हैं ।’

: १० :

किसानों की बरबादी

१. क्या थे, क्या हो गए ?

हम जब अपने पहले की सुख-समृद्धि के इतिहास से आज की अपनी दशा का मुकाबला करते हैं तो चकरा जाते हैं कि हम क्या थे, आज क्या हो गए । हम सुख से रहते आए । मेहमानों से जी खोलकर मिलते रहे । मेहमान आते थे तो हम अपना परमसौभाग्य मानते थे । उनके साथ हमारे घरों में कल्याण आता था । लक्ष्मी आती थी ; परन्तु जबसे ये विदेशी व्यापारी मेहमान आये तभी से हमारा दुर्भाग्य शुरू हो गया । पहले भी विदेशियों से संबंध था, परन्तु वे सचमुच व्यापारी थे । लुटेरे न थे । ये कैसे मेहमान आये जिनकी निगाह सदा हमारे माल पर रही और आज भी, जब हम बरबाद हो गए हैं, उनकी लूट-खसोट घटने का नाम नहीं लेती ।

२. लुटेरों की मेहमानी

जिस समय विदेशियों से हमारा अधिक संबंध न था, उस समय भारत-वासियों की खत्ती बखारियों में अन्न समाता न था, पशु यथेष्ट थे, दूध-घी अच्छी तरह मिलता था, लोगों के शरीर पर मजबूत कपड़े भी अच्छी तरह दिखाई देते थे और महंगी का तो कही नाम भी न था । उन दिनों हृदय में कंजूसी को जगह न मिलती थी । कोई मेहमान आ जाता था तो वह भार नहीं होता था । उसके आने से किसान फूले नहीं समाता था ।

देशवासियों में सादगी, संतोष तथा आजादी दिखाई देती थी। किन्तु जबसे हम शिकारियों के जाल में उलझ गए, तबसे हमारा धन और माल जहाजों में लद-लद कर यहां से जाने लगा। पहले यहां की अनमोल कारीगरी की चीजें ही जाती थीं; परन्तु अब कच्चा माल ढो-ढोकर जाने लगा। आज तो विदेशियों का बस चले तो वे भारत-भूमि की आतें तक निकाल कर रेल में लाद कर ले जायं और यही हो भी रहा है। सोना, चांदी और मँगनीज आदि धातुओं की खानों से जो माल निकलता है, वह कहां जाता है? अन्न, रुई, तिलहन—यहां तक कि हड्डियां तक बिनवा-बिनवा कर कहां जाती है? साथ ही मजेदार बात यह है, कि हमें बतलाया जाता है कि अंग्रेजों को यह सब लूटने का परिश्रम हमारे ही लाभ के लिए करना पड़ता है। पांच करोड़ की रुई जाती है और साठ करोड़ का कपड़ा आता है। बीच के पचपन करोड़ कहां चले जाते हैं? इस लूट से तो नादिरशाह की लूट अच्छी थी। उसको हम लूट तो कह सकते हैं। यह कम्पड़शाह की लूट तो लूट भी नहीं कहलाती। वह तो यही कहता है कि भारतवासियों के शरीर की शोभा बढ़ाने के लिए उन्हें सस्ते कपड़े देने और उन्हें भांति-भांति के लाभ पहुंचाने के लिए ही वह यहां आया है। यही तो उसका जादू है। सबसे बढ़ कर अचरज की बात यह है कि भारत के किसान उसकी लूट में शामिल होते हैं और उसमें अपना लाभ समझते हैं।

३. उनका जादू

विदेशियों ने कहा कि तुम्हें खेती करना नहीं आता। तुम्हारे हल और औजार बहुत पुराने हैं, तुम्हारा खेती का ढंग पुराना है। जंगली है। अब तुम्हें विलायती ढंग के लोहे के हल काम में लाने चाहिए। हमारा कृषि-विभाग उसका प्रयोग करके दिखावेगा। हमारे अनेक सीधे-सादे किसान इस भ्रम में पड़ कर कि साहब जो कहते हैं ठीक होगा, उनके कहे पर चले; परन्तु नगीजा उलटा ही हुआ। साहब कहते हैं कि किसानों के खेत विस्तार में बहुत छोटे-छोटे हैं। इस तरह के खेतों में वैज्ञानिक ढंग से खेती नहीं

हो सकती। भाप के इंजन से चलने वाले औजार इनमें काम नहीं दे सकते। इसलिए छोटे-छोटे किसानों को उजाड़ कर जमीन के बहुत बड़े टुकड़ों में खेती करनी चाहिए। ठीक है, घर-घर में छोटे-छोटे चूल्हे रखने में हरेक घर की स्त्रियों को रोटी-पानी में फँसना पड़ता है और उसका बहुत समय नष्ट होता है। यदि इनके स्थान में बड़े-बड़े भट्टियारखाने खोल दिये जायें तो अनेक स्त्रियों को फुर्सत मिल जाय, उनका समय बचे और आर्थिक दृष्टि से भी लाभ हो। अंक रखकर भी यह लाभ सिद्ध किया जा सकता है, इसलिए छोटे-छोटे चूल्हों को नष्ट करके रोटी-पानी के भँभटों से भी पीछा क्यों न हटा लिया जाय ? भारतवासी जगली है। उनका उत्तराधिकारी का कानून भी पुराने ढंग का है। उसके कारण जमीन छोटे-छोटे टुकड़ों में बंटती जाती है। इस कठिनाई को दूर करने के लिए एक नया कानून बना कर छोटे-छोटे किसानों से जमीन छीन ली जानी चाहिए और किसी बड़े जमींदार को—चाहे वह गोरा हो या काला, दे देनी चाहिए। इससे पैदावार बढ़ेगी, वैज्ञानिक ढंग से खेती हो सकेगी और आधुनिक औजार काम में लाये जा सकेंगे। औजार सब विलायत से आयेगे, टूटे-फूटेंगे तो उनके कल पुर्जे भी वहीं से मंगाने पड़ेंगे। वैज्ञानिक खाद भी काम में लाई जाय ताकि उसे बनाने और बेचने वाली कंपनियों को लाभ हो। उपाय तो बहुत बढ़िया है। इसकी बदौलत छोटे-छोटे किसान जमीन छोड़कर मजे के मजूर बन सकते हैं। यह सब अर्थशास्त्र है। न गृहशास्त्र न नीति-शास्त्र, केवल अर्थशास्त्र—अर्थशास्त्र !!!

अर्थशास्त्र की दृष्टि से पशुपालन भी हानिकार है, इसलिए पशुओं को बेच देना चाहिए। कोई ग्राहक न मिले तो उन्हें कसाईखाने में भेज दीजिए। वहाँ उसकी हड्डियों और चमड़े आदि की अच्छी कीमत खड़ी हो जायगी। इसके बाद ले आइये पम्प और तेल के इंजन और छोड़िये पुर चला कर खेत सींचने का भँभट ! कंपनी वाले खुद आकर इंजन चालू कर जायेंगे, इसका वे मेहनताना भी आपसे नहीं माँगेंगे। आपको केवल किरासिन तेल लाना होगा और कुछ नहीं। बस फिर जितनी जी चाहे

उतनी सिंचाई कीजिये । किसान इस तरह की बातें सुनकर अचंभे में पड़ जाता है, और इंजन लाने का विचार करने लगता है । ऐसा होना स्वाभाविक ही है । वह सोचता है कि जो सबकी गति होगी, वह मेरी भी होगी ।

४. हर बात में उन्होंने अपना फायदा सोचा

पहले खेत में जो पैदावार होती उगीमें सरकार का भाग रहता था । यदि फसल पैदा होती थी तो सरकार लगान लेती थी और फसल न होती थी तो न लेती थी । बाद को इसमें भ्रंश दिखाई दी, इसलिए नकद मालगुजारी या लगान लेना स्थिर हुआ । किस जमीन का कितना लगान होना चाहिए यह निश्चित करना सरकार का काम है, इसमें किसान की सम्मति लेना जरूरी न रहा । वह इन बातों को क्या जाने? प्राचीनकाल में भारत के राजा और बादशाह पैदावार का छठा भाग बतौर मालगुजारी के लेते थे; परन्तु अंग्रेज बहादुर ने इसे खूब बढ़ाया । किसान की मजूरी और लागत निकल आए तो गनीमत, बाकी सभी मालगुजारी में चला जाता है । स्वर्गीय दत्त महोदय ने सरकारी प्रमाणों से ही साबित कर दिया है कि सरकार पचास प्रतिशत से भी अधिक मालगुजारी लेती है और दिन-पर-दिन इसमें भी इजाफा होता जा रहा है । किसान के सिर का बोझ इस तरह धीरे-धीरे बढ़ता ही जाता है । मालगुजारी तय करने वाले अफसरों के खिलाफ कोई शिकायत सरकार में सुनी ही नहीं जाती । किसान अगर खेत का सुधार कर खेती की बढ़ती करता है, कुआं खुदवाता है और पैदावार बढ़ाता है तो उसके कारण भी मालगुजारी बढ़ जाती है । ऐसी दशा में किसान को खेती की दशा सुधारने की इच्छा कैसे हो सकती है ? इस तरीके के कारण किसान की माली हालत दिन-पर-दिन खराब होती गई और कोई सहारा न रहने के कारण अकाल में डटे रहने की ताकत घट गई । इसका नतीजा यह हुआ कि वह कर्जदार हो गया । जिसकी प्रतिष्ठा जितनी कम और अवस्था जितनी लाचार होती है, उसको ब्याज भी उतना ही अधिक देना पड़ता है । इस कारण से किसानों की देनदारी धीरे-धीरे बढ़ती गई । इस समय

उनके सिर पर कर्ज का बोझ इतना ज्यादा हो गया है कि वे उससे दबे जा रहे हैं और उनके छुटकारे का प्रश्न बहुत ही कठिन बन गया है।

किसानों को इस देनदारी से छुटकारा दिलाने के लिए दक्षिण भारत में एक कानून बनाया गया है। उसका नाम है “दक्षिण के किसानों को आराम पहुंचानेवाला कानून”। इस कानून के मुताबिक पहले महाराष्ट्र में और फिर गुजरात में काम किया गया। इस कानून से सरकार की लगान-नीति की सख्ती में किसी प्रकार की कमी नहीं हुई। इसका नतीजा सिर्फ यही हुआ है कि संकट के समय किसानों को उधार देने वाला भी अब कोई नहीं रहा। सरकार खुद किसानों को रुपया उधार देती है और तकावियां बाटती है। इसकी किश्ते नियम और ब्याज आदि बातें इस तरह गढ़ी गई हैं कि किसान पानी से निकल कर आग में जा गिरा है। किसान को अपने पिता का प्रेम-कर्म करना हो या कन्या का विवाह करना हो तो उसे तकावी नहीं मिल सकती। वह सिर्फ खेती के काम के लिए ही मिल सकती है। उसे वसूल करने वाले भी माल महकमे के अफसर ही होते हैं। पत्र-पुष्प से उनकी भलीभांति पूजा करनी होती है, एक ओर तकावी लेते समय किसान लूटा जाता है और दूसरी ओर उसे चुकाते समय कठिन-से-कठिन कायदों को पाबंदी करनी पड़ती है। इससे किसान निराश हो जाता है। एक ओर महाजन ने रुपया देना बन्द कर दिया, दूसरी ओर सरकार सख्ती करने लगी। किसान को किसी का भी सहारा न रहा; उसे खेती या गृहस्थी के खर्च के लिए वक्त-बेवक्त कुछ-न-कुछ रुपयों की जरूरत पड़ती ही है, लेकिन अब वे कहां से लाये? किसानों की बेबसी से एक तीसरे ही दल ने लाभ उठाया। यह दल काबुली पठानों का था। हाथ में छुरा लेकर यह दल कार्यक्षेत्र में उतरा। काबुलियों के ब्याज ने महाजन और सरकार को भी मात कर दिया। रुपया दो या हड़ियां तुड़वाओ। यही काबुलियों का नियम था। महाजन किसान को एकदम घूसता न था। वह आंखें दिखाता था, नरम-गरम होता था; किन्तु किसान को जिन्दा रहने देता था। एक तो पुश्त-दर-पुश्त से लेनदेन, दूसरे हिन्दू-समाज, इसलिए वह अधिक

सख्ती कर भी न सकता था। किन्तु काबुली को क्या? महाजनों का लेन-देन बन्द होने पर इस समय देहात में काबुली जो लूट मचा रहे हैं, उससे किसानों की हालत का पता अच्छी तरह चल सकता है। किसान खेत छोड़कर कहाँ जायँ और क्या करें? किसानों को आराम पहुँचानेवाले सरकारी कानून ने ही यह हालत पैदा की है। डाक्टर भंडारकर-जैसे सरकार के खैर-स्वाह ने भी एक बार व्यवस्थापिका परिषद् में काबुलियों की इन ज्यादतियों का वर्णन कर, प्रजा के प्रति सरकार के उपेक्षाभाव की निंदा की थी। एक ओर मालगुजारी का बोझ दिन-पर-दिन बढ़ता जा रहा है, क्योंकि बिना उसके गोरे हाकिमों की बड़ी-बड़ी तनखाहें और भारतवासियों को कब्जे में रखने और विदेशों पर चढ़ाई करने के लिए रखी हुई फौज का खर्च चलाना कठिन है और दूसरी ओर किसानों की देनदारी और लाभदायक कहे जाने वाले कानूनों का भयंकर परिणाम; दोनों के बीच में बेचारे किसान पिसे जा रहे हैं।

किसान को रुपयों की जरूरत तो पड़ती ही है। इसके लिए उसे ऐसी चीजें बानी पड़ती हैं जिससे रुपये मिल सकें। बच्चों के लिए अन्न और पशुओं को चारा चाहिए; किन्तु सरकार और काबुलियों के आगे वह इन चीजों का विचार तक नहीं करता। बच्चे और पशुओं का चाहे जो हो, सरकार का लगान और काबुली का पावना तो चुकाना ही होगा। इस प्रकार लगान देने के लिए काबुली को खुश रखने के लिए, महाजन से कुछ अन्न-पानी लिया हो तो उससे उद्धरण होने के लिए, किसान को अपनी पैदावार—समूचे वर्ष के कठिन परिश्रम का फल बेच देना पड़ता है। न वह अनुकूल भाव की राह देख सकता है, न अनुकूल समय की। फल यह होता है कि उसे अपने माल का पूरा दाम भी नहीं मिलता। मजबूर होकर सब मिट्टी के मोल बेच देना पड़ता है। चैत में जिस समय गेहूँ पैदा होता है, उस समय उसे चार रुपये मन बेच देना पड़ता है; किन्तु बरसात में खाने या कार्तिक में बोने के लिए जब उसे उसकी जरूरत पड़ती है, तब वही छः रुपये मन खरीदना पड़ता है। नगद रुपये तो उसके पास रहते ही नहीं, इसलिए उसे यह भी

उधार लेना पड़ता है। इन रूप्यों का ब्याज जोड़ने पर उसे पहले के भाव से दूना या इससे भी अधिक देना पड़ता है। इस तरह माली मुसीबत के कारण किसान को दूनी चोट सहनी पड़ती है। जिस समय किसानों को सरकारी किश्त चुकानी होती है, उस समय किसी हाट में जाकर देखने से किसान किस प्रकार अपना अन्न मिट्टी के मोल बेचते हैं, इसका पता चल सकता है। सरकार की किश्त महाजन या काबुली से भी भयंकर होती है काबुली तो अन्त में मनुष्य ठहरा, किश्त मनुष्य थोड़े ही है, जो मान जायगी। किश्त माने मशीन। मशीन चलाने के लिए आकाश ढूँढ कर या पाताल फोड़कर कहीं-न-कहीं से तेल लाना ही होता है। किश्त की बदौलत किसान के यहां साक्षात् धमराज आ पहुँचते हैं। जिस समय उनका आगमन होता है उस समय किसान को अपनी प्यारी-से-प्यारी वस्तु बेच देनी पड़ती है। पशुओं का चारा बेच देना पड़ता है, जी जिलाने के लिए रक्खा हुआ अन्न तक बेच देना पड़ता है और वह भी मिट्टी के मोल। बाजार-भाव तो व्यापार के अनुसार घटता-बढ़ता है। उससे फायदा उठाने के लिए वक्त का इन्तजार करना पड़ता है; किन्तु किश्त के समय में घटा-बढ़ी न हो सकने के कारण किसान को तत्काल अपनी चीजें बेच देनी पड़ती हैं। किसान को इन सब दुःखों से बचाने के लिए सरकार ने सहयोग-समितियों की स्थापना की। जिन किसानों की पंचायतें तोड़कर उनका आपसी मेल-जोल नष्ट किया गया था, उन्हीं में इन समितियों द्वारा आपसी मेल-जोल की कोशिश की गई। लेकिन इस उपाय का परिणाम भी शून्य में ही आया। जिन गांवों में ऐसी समितियां कायम की गई, उन गांवों को इनसे लाभ होना तो दूर रहा, उल्टे किसान इन नई किस्म के सरकारी अफसरों के नीचे इस तरह दब गए कि जिन गांवों में ये समितियां अभी तक कायम हैं उनमें कोई दूसरा आन्दोलन चल नहीं सकता। अनुभव ने बतलाया है कि जिन गांवों में सहयोग-समितियां हैं, उन गांवों में खादी के आन्दोलन की जड़ नहीं जमने पाती। जम भी कैसे सकती है? किसान उस सहयोग-समिति के नीचे कुछ-न-कुछ दबे ही रहते हैं? ऊपर से सुपरवाइजर और

आर्गनाईजर उन्हें लाल पीली आंखें दिखलाया करते हैं। ऐसी अवस्था में बेचारा किसान क्या कर सकता है; सहयोग-समितियों से क्या-क्या लाभ हुए, इसका वर्णन हम यहां करना नहीं चाहते। इस सम्बन्ध में सिर्फ इतना ही कहना काफी है कि उनका व्याज, उनमें होनेवाली धूर्तता, उनकी किश्तें, उनकी सख्त निगरानी और उनकी गोलमाल से जहां-जहां वे कायम हैं, वहां लोग बेतरह ऊब उठे हैं।

५. मालगुजारी की तहसील

सरकार ने कानून बनाकर, सरकारी मालगुजारी साल में दो किश्तों में लेना तय किया है, किन्तु देहात में मालगुजारी वसूल करनेवाले हाकिम या पटवारी उसे एक ही बार में—एकमुश्त वसूल करने की कोशिश करते हैं। वे किसान पर निजी तौर से दबाव डालकर उसे समझाते हैं कि “भविष्य में शायद रुपया रहे न रहे, सरकार का लगान तो आखिर देना ही होगा, सब एक साथ ही क्यों नहीं दे देते?” सरकार ने कानून बनाया कि फसल चार आने से कम हो तो लगान उस साल मुल्तवी रख कर अगले साल लिया जाय; किन्तु पटवारी और सर्कल इंस्पेक्टरों की यह हालत है कि पैदावार कम होने पर भी वे अधिक ही लिख मारते हैं। इस सम्बन्ध में न वे किसानों से पूछते हैं, न कोई जांच ही करते हैं। कानून अल्मारियों की किताबों में ही रह जाते हैं। ऊंचे अधिकारियों को छोटे कर्मचारियों की बात माननी ही पड़ती है। न मानें तो देहात में सरकार की प्रतिष्ठा नष्ट हो जाय। गुजरात के खेड़ा जिले में यही हुआ था। पहले सरकार को छोटे कर्मचारियों की बात रखनी पड़ी थी; किन्तु बाद को आन्दोलन के कारण उसे अपना विचार बदलना पड़ा।

छोटे कर्मचारी अक्सर रिश्वतखोर होते हैं। किसान को जब कोई काम पड़ता है तो उनकी पूजा अवश्य करनी पड़ती है। सरकारी कानून है कि किसी मिसिल की नकल जरूरी हो, तो एक आना देने से मिल सकती है; किन्तु चाहे जिस किसान से पूछिये कि एक आना देने पर क्या कभी समय

पर काम हुआ है ? नाम बदलवाना हो तो पहले पटवारी साहब को एक रुपया दक्षिणा देनी होगी । पटवारी की लड़की या तहसीलदार के लड़के का ब्याह होने पर किसान को कौन-कौन सौगात भेंट नहीं करते हैं । सरकारी नौकरों को तरकारी, दूध और घी में कितने पैसे खर्च करने पड़ते हैं ? उनके सफर के लिए सवारी का इंतजाम कौन करता है ? घोड़े की लगाम टूट गई तो मोची हाजिर है, तँबू के लिए खूटो की जरूरत हुई तो बढ़ई बसूला लिये खड़ा है, घोड़े के लिए घास की जरूरत हुई तो किसान की लाक (दानो समेत अन्न के पौधों के गट्ठे) मौजूद है, शीतल जल के लिए घड़ा या मुराही चाहिए तो कुम्हार लिये खड़ा है, हजामत या चम्पी करवानी हुई तो नाई हाजिर है, किसी दूसरे गाव को चिट्ठी या खबर भेजना है तो बेगार के लिए चमार या भगी मौजूद है, दूध की जरूरत हुई तो अहीर खड़ा है । घी दूसरों को रुपये सेर नहीं मिलता; किन्तु हुजूर को रुपये का दो सेर देना होगा, क्योंकि उनसे किसी दिन काम पड़ सकता है । इस तरह छोटे-बड़े सभी हुजूर मौज करते हैं, तब मुखिया और पटवारी हो क्या बाकी रह जाय ? मुखिया का खेत निराना है, सभी मजूरी-पेशा लोगों को दो-दो दिन मुफ्त काम करने का हुक्म निकाल दिया गया । खेत जोतना है तो किसी के हल-बैल पकड़ मगाये गये, काटने का वक्त हुआ तो मजूर बेगार में पकड़ लाये गए और घोड़ी के लिए चारे की आवश्यकता हुई तो किसी कुरमी-काछी को रोज हरियाली का गट्ठर पहुँचाने की फरमाइश की गई । यह एक प्रकार का कर है । जिस तरह देशी रियासते सरकार को कर देती हैं, उसी तरह किसानों से यह कर लिया जाता है । सरकार उन्हें जमीन पर रहने देती है, यह क्या कोई मामूली मेहरबानी है ? सरकार की यह हकूमत की रीति बड़े से लेकर छोटे कर्म-चारियों तक छन-छन कर चलती है । हरेक काम के लिए बड़े से लेकर छोटे कर्मचारी तक का अहसान सिर पर चढ़ाना पड़ता है । इसका देश-वासियों की माली हालत के सिवा चाल-चलन पर भी असर पड़ता है । जब इंग्लैंड और भारत के आपसी संबंधों का इतिहास लिखा जायगा, तब,

इंग्लैंड क्या-क्या लूट ले गया, यह लिखा जायगा। किन्तु जो गांव-के-गांव नष्ट हो गए हैं, लोगों की नीति छिन्न-भिन्न हो गई है, जनता भी डरपोक बन गई है, लोग भूठ बोलना सीख गए हैं, लोग मारतेखां को पूजने लग गए हैं, यह थोड़े ही लिखा जायगा। देश के ही मनुष्य शिक्षा प्राप्त कर कुल्हाड़ी के बेंट की तरह देशवासियों पर जो चोटे कर रहे हैं, वह थोड़े ही लिखा जायगा। इस देश की सभ्यता का नाश कर, अंग्रेजी शासन-पद्धति ने जो बुराइयां की हैं, और देशवासियों को जिस तरह लोभी, डरपोक और नालायक बना दिया है, उससे लूट और कत्ल लाख दरजे अच्छे थे। तैमूर की लूट, नादिरशाह की कत्ल और अहमदशाह अब्दाली की चढ़ाई सभी इससे अच्छे थे।

६. पशुओं की जायदाद छिन गई

अब हम लोग जरा पशुओं पर दृष्टिपात करें। मनुष्य तो प्रलोभन में पड़ गए; किन्तु पशुओं ने कौन-सा अपराध किया था ? जिस प्रकार गेहूँ के साथ घुन पिस जाता है और सूखी चीजों के साथ हरी चीजें भी जल जाती हैं, वही अवस्था इनकी भी हुई। पशुओं को चरने के लिए भारत में गोचर-भूमि की कमी नहीं थी; किन्तु ईस्ट इंडिया कंपनी के किरानी और डाइरेक्टरों से लेकर आज तक जहां रुपये के लिए हाथ-हत्या मची हुई है, उसपर भूखे राज्य के पास गोचर-भूमि कैसे रह सकती है? गोचरों की जमीन लाट-की-लाट बेच दी गई, नीलाम कर दी गई। धनवान व्यापारी और जमींदार पतंगे की तरह इन भूमि-खंडों पर टूट पड़े। बेचनेवाले साहबों की मेमों को सोने की जंजीरें पहनाई गई और लाल हाथ किये गये। इन लाटों की जोताई साधारण बैलों से कैसे हो सकती थी ? हजारों बीघा जमीन कितने दिनों में जोती जाती ? घास की जड़ें भी खूब गहराई तक जमी हुई थीं। बस, विलायत से ट्रैक्टर मंगाये गए और बात-की-बात में जमीन जोतकर बराबर कर दी गई। जिन लोगों के पशु इन जमीनों में चरकर आशीर्वाद देते थे, जिन

गांवों के निकट ये गोचर-भूमि थी, और दूर-दूर के अहीर गड़रिये, जो इनसे लाभ उठाकर भारत भूमि को गृज्या-गृज्या कहते थे, वे इस पैशाचिक हल को देखकर दंग रह गए। इस हल को चलाने के लिए एक गोरा साहब आया था। उसके साथ अनेक काले लोग भी थे; किन्तु वे सब साहब की टोपी पहनकर नकली साहब बन गए थे। इन सबको देखकर देहातियों के आश्चर्य का ठिकाना न रहा।

खैर, किसी तरह ये लाट जोते गए, घास की जड़ें उखाड़ फेंकी गईं और उनके स्थान में कपास बोई गई। इस कपास के बोनेवाले मालामाल हो गए और सरकार को भी काफी आमदनी हुई। पहले तो नीलाम में लाभ हुआ, फिर मालगुजारी में बढ़ती हुई। किन्तु दूसरी ओर लाटवाले और आसपास के ग्रामवासियों में भगड़ा होने लगा। जो लोग वहाँ पशु चराने जाते उन्हीं से लड़ाई होती। लाटवालों ने देहातियों को दवाने के लिए पठानों को नौकर रक्खा। इसके फलस्वरूप वहाँ दंगे और हत्याएँ हुईं? किन्तु इनका कौन हिसाब? हत्याओं की ओर कौन देखता है? जिन लोगों के पुस्तैनी हक छिन गए, उनमें से कुछ लोगों ने लूटमार का पेशा अस्तिथार करके मौके-बे-मौके लाटवालों को तंग करना शुरू किया। जिन साहबों ने यह आग लगाई थी, वे शाही महलों में बैठे हुए चैन की बंसी बजा रहे थे और देशवासियों की इस प्रकार दुर्गति हो रही थी। यह तो हुई मनुष्यों की बात। वे पशु कहां गये, जिनके लिए प्रकृति ने यह भोजन सुरक्षित रक्खा था? चारे की कमी के कारण किसान ने उनका ज्यादा तादाद में रखना उचित न समझा। उसे मजबूर होकर दो बैल और एकाध भैंस रखनी पड़ी। शेष सभी पशु उसने बेच दिये। दुबले पशु कसाईखाने और अच्छे ब्रेजिल चले गए। किसान को रुपये काफी मिले; पर वे दो ही दिन में काफूर हो गए। इस प्रकार पशु भी चले गए और रुपये भी न रहे। रह गए केवल एक-दूसरे को आंखें दिखाते हुए ग्रामीण और लाटवाले। इस योजना का सुन्दर नाम रक्खा गया—डेवेलपमेंट स्कीम अर्थात् खेती की उन्नति करने वाली योजना। इसके अनुसार सारी गोचर-

भूमि और पड़ती जमीन को खेत बना दिया गया। इस अमरीकन तरीके को प्रचलित करने के लिए सरकार को धन्यवाद दिया गया। भारत के पशु मर मिटे; किन्तु इस योजना से भारत मंत्री को आनन्द हुआ। भारत की अवनति हुई और यह सब आजकल के अर्थशास्त्रों के फेर में पड़कर हुआ।

सरकार पांच-पांच वर्ष में पशुओं की गिनती के अंक प्रकाशित करती है। उन्हें देखने से इस बात का पता चल सकता है, कि भारत में पशुओं की संख्या दिनों दिन घटती जा रही है। किसी किसान के यहाँ बैल ही नहीं होते। वह माँग-जाँच कर या भाड़े पर लाकर काम चलाता है। किसी के पास एक ही बैल होता है, वह दूसरे को सांभोदार बनाकर काम चलाता है; किन्तु इससे खेत बोने का काम ठीक समय पर नहीं हो पाता। किसी किसान के यहाँ बैलों की अच्छी जोड़ी होती है तो उसका मूल्य दो ढाई-सौ रुपये आंका जाता है। सब किसान ढाई-सौ की जोड़ी कैसे ले सकते हैं? बैलों की अच्छी जोड़ी रखना आजकल हाथी बांधना समझा जाता है। अच्छी नसल के पशु घटने जा रहे हैं। कुछ दिनों में उनका पता भी न रहेगा। जिस प्रकार कई किस्म के भारतीय घोड़ों का निशान संसार से मिट गया है, उसी तरह हकूमत चलती रही तो बैलों की भी अच्छी नसलें लोप हो जायेंगी। केवल गुजरात का उदाहरण लीजिए वहाँ अब सिंधी लोग बैल बेचने जाते हैं। जो गुजरात किसी समय एक उद्यान-रूप था, जिस गुजरात में गोचर-भूमि की कोई कमी न थी, जिस गुजरात के बैल बढ़िया माने जाते थे, उसी गुजरात के लोगों को अब सिंधियों से बैल खरीदने पड़ते हैं।

आजकल एक गाय रखना भी भारी पड़ता है। पहले किसी ब्राह्मण का घर बिना गाय के न रहता था; किन्तु अब मंहगे दाम की घास और दाना खिलाकर गाय रखी नहीं जा सकती। पशुओं को खिलाने में भी अर्थशास्त्र देखा जाता है। अहीर गायें पालकर क्या करें? उन्हें क्या खिलायें? उन्हें बेच देने के सिवाय और कोई चारा ही नहीं दिखाई देता। बेचने से अच्छी रकम मिलती है। मांस का मूल्य भी मिलता है चमड़े

का मूल्य भी मिलता है, हड्डियों का भी मूल्य मिलता है, खुर और सींगों का भी मूल्य मिलता है। पशु को जिंदा रखने में जितना लाभ है, उसको मार डालने में उससे कहीं अधिक लाभ है। इस प्रकार घर में अर्थशास्त्र दाखिल हुआ। सरकार ने इसके लिए कसाईखाने खुलवा दिये। अकेले बंबई का ही उदाहरण लीजिये। कोई कह सकता है कि वहां कसाईखाने में प्रतिवर्ष कितने पशुओं की हत्या की जाती है? सरकार की ओर से इसका विवरण प्रकाशित होता है। पाठक उसे देख सकते हैं। वतनाइए, अब घी और दूध कहां से लाया जाय? कैसे खाया जाय? खाइए घी के स्थान में वेजीटेबिल प्रोडक्ट (वनस्पति घी) और दूध के स्थान में नेल्सन आदि का जमाया हुआ दूध। भारत के बच्चे बिना दूध के तड़प रहे हैं; किंतु किससे शिकायत की जाय? गोचर-भूमि को नीलाम करनेवाले साहबों से या उन्हें खेत बनाकर मालदार बननेवाले देशवासियों से? गोचर-भूमि की कौन कहे, गुजरात के मातर तालुके में तुलसी के वन थे। वहां की तुलसी प्रतिवर्ष गोकुल-मथुरा और काशी के देवताओं पर चढ़ाई जाती थी; किंतु वे गोड़-गोड़कर बराबर कर दिये गए और तुलसी के स्थान में वहां कपास के पौधे लहलहाने लगे। यह कपास मंचेस्टर और टोकियो गई। वहां से उसके रुपये आये। उस रुपये से हमने विलायती कपड़ा खरीदा और जो बचा उससे साबुन, तेल फुलेल और मौज-शौक की हजारों चीजे लीं। दूध की क्या आवश्यकता है? भारत के सुकुमार तड़पते हैं तो उन्हें तड़पने दीजिये !

७. जंगल भी लुट गए

मनुष्य और पशुओं की अवस्था देख चुके। चलो, अब जरा वृक्षों के पास चलें। बताओ भाई तुम्हारे क्या हाल हैं? वृक्ष माने प्रकृति का बनाया हुआ बंगला। उसमें न जाने कितने जीव-जन्तु विश्राम करते हैं। किंतु जरा सोचिए कि प्रतिवर्ष इस प्रकार के कितने वृक्ष कटते हैं? माना कि मिल और दंजनों के लिए लकड़ी की आवश्यकता पड़ती है किन्तु क्या

इनके लिए नये वृक्ष भी रोपे जाते हैं; अंग्रेजी में एक कहावत है कि 'वृक्ष रोपने से स्वर्ग मिलता है।' जरा इस सूत्र के अर्थ पर विचार कीजिए। बड़े शहरों में रहनेवाले लोग देहातों से लकड़ियां और कोयले मंगाते हैं। खैर कोई हर्ज नहीं; किन्तु क्या शहरियों को कभी यह बात सूझती है कि वर्ष में कम-से-कम एक वृक्ष तो कहीं लगवा दें? संभव है कि सूझती हो पर वे वृक्ष कहा लगायें? तिमंजिले पर, जहां रहते हैं वहां? उनके पास तो बिस्वा भर भी जमीन नहीं है। वे तो बिना मकान के रईस हैं। वे तो यह भी नहीं जानते कि कोयले के जो बोरे-पर-बोरे चले आ रहे हैं, ये कहां से आ रहे हैं। बम्बई सरकार ने महुओं के सम्बन्ध में एक कानून बनाया है। महुओं से शराब बनती है, इसलिए घरों में उनका रखना जुर्म करार दिया गया है। जब महुए घर में नहीं रखे जा सकते तब वृक्ष ही रखकर क्या किया जाय? रुपयो के लिए तो हाय-हत्या सदैव मची ही रहती है। ऐसी दशा में महुओं के वृक्ष कब तक अपनी खैर मना सकते हैं? केवल खेड़ा जिले में पांच-सात वर्षों में जितने महुए काटे गए हैं, उनकी कल्पना करना भी कठिन है। इनके स्थान में नये वृक्ष कितने लगाए गए? विज्ञान हमें बतलाता है कि जहाँ वृक्ष कम होते हैं वहाँ वर्षा भी कम होती है और जहाँ वृक्ष अधिक है वहाँ वर्षा भी अधिक होती है। वर्षा क्यों नहीं होती? इस सम्बन्ध में भलीभांति विचार करने पर यही मालूम होता है कि हमारे देश में जितने वृक्ष काटे जाते हैं, उतने लगाये नहीं जाते। जर्मनी में इस आशय का एक कानून है कि जिस दिन राजा का जन्म हो, उस दिन प्रत्येक पुरुष और प्रत्येक स्त्री को एक वृक्ष अवश्य रोपना चाहिए; किन्तु इस देश में ऐसे कानून कौन बनाये? लावारिस देश में किसे गरज है? जंगलों से सरकार को आमदनी होती है। कुछ जंगल रिजर्व रखकर बाकी काटे जाते हैं। इनका व्यापार करने के लिए टिंबर मर्चेन्ट (चिरी हुई लकड़ी के सौदागर) पैदा हुए हैं। रेल का विस्तार दिनों-दिन बढ़ता जा रहा है। पटरी के नीचे रखने के लिए स्लीपर्स की जरूरत पड़ती है। इसके लिए भी जंगलों पर ही शनि-दृष्टि

डाली जाती है। ज्यों-ज्यों जंगल कटते जायेंगे और जमीन साफ होती जायगी, त्यों-त्यों खेती की उन्नति के लिए निर्माण-योजनाएँ बनती जायगीं। इसे गनीमत ही समझना चाहिए कि कुछ जंगल रिजर्व रखे जाते हैं, किन्तु यह भी केवल इसलिए किया जाता है कि लकड़ी की मांग होने के कारण सरकार को इन जंगलों से लाभ होता है। जिस दिन सरकार को मालूम हो जायगा कि इसमें कोई लाभ नहीं है, बल्कि जमीन के लाट बनाकर देने में ज्यादा लाभ है, उसी दिन ये भी साफ हों जायेंगे।

यह सब रोना रोने का तात्पर्य यह है कि हमारा देश अनाथ हो गया है। लोग अपनी-अपनी सुविधा के अनुसार अपना-अपना ढोल बजा रहे हैं। बेचारा किसान इन सबों के बीच में मृत्यु-शैय्या पर पड़ा है।

एक जरूरी बात कहनी रह गई। भारत का माल विदेश चले जाने के कारण भूमि की उपजाऊ-शक्ति भी बहुत घट गई है। साधारण नियम यह है कि जमीन से जितना लिया जाय, दूसरे प्रकार में उसमें उतना ही डाला जाय। भारत से प्रतिवर्ष अंडी, सरसों, तिलहन, चमड़ा, हड्डियाँ और गेहूँ आदि कीमती वस्तुएँ लाखों टन विलायत जाती हैं, परन्तु उनके बदले जमीन में क्या पड़ता है? अनेक स्थानों में तो किसानों को लकड़ियाँ नहीं मिलती, इसलिए वे गोबर के कंडे बनाकर जलाते हैं। ऐसा करने से सोने-चाँदी जैसी यह खाद भी नष्ट हो जाती है। इन्हीं सब कारणों से जमीन की उपजाने की ताकत दिन-दिन घटती जाती है। एक तो किसान की माली हालत खराब, दूसरे उसके बैल अधमरे, तीसरे उसकी पैदावार का एक आना भी घर में न रहने पाये, ऐसी अवस्था में किस प्रकार क्या डालकर वह जमीन की ताकत कायम रख सकता है? सरकार का कृषि-विभाग कहता है कि उसे विदेशियों से कृत्रिम खाद खरीदनी चाहिए जिससे कि और भी पैसे विदेशियों के हाथ लगें।

: ११ :

दरिद्रता के कड़वे फल

१. दरिद्रता की हद

अभी संवत् १९८६ में ही एक समाचार छपा था कि पार्लमेंट का कोई मजदूर सदस्य भूख से व्याकुल होकर सभा-भवन में ही बैठे-बैठे बेहोश हो गया। यह मजूर सदस्य बड़ा दरिद्र था। क्योंकि इसकी सालाना आमदनी कुल ४०० पाँड अर्थात् ५३३३) रुपये थी। पार्लमेंट के प्रभुओं ने तरस खाकर ५० पाँड अर्थात् ६६७ रुपये और बढ़ा दिये, क्योंकि शायद इस गरीब सदस्य को पाँच-छः प्राणियों के बड़े परिवार का खर्च उठाना पड़ता था। * ब्रिटिश पार्लमेंट की निगाहों में यह मजूर सदस्य, जिसकी आमदनी ४४४) मासिक थी, बहुत दरिद्र था और उसकी आमदनी खर्च के लिये काफी न थी। यहाँ के लोगों की आमदनी संसार के सभी देशों से अत्यंत कम है। ३७) रुपये सालाना प्रति व्यक्ति से भी कम है। अगर १४-१५ रुपये रोज कमाने वाला पार्लमेंट की नजरो में गरीब है तो ६-७ पैसे रोज कमाने वाला क्या होगा ? उसे किस कोटि में रक्खेंगे ? दरिद्रता की भी एक हद होती है। हमारी समझ में जिस आदमी को जीवन की रक्षा के लिए खाना, कपड़ा और रहने की जगह भर मुश्किल से मिले, वह बिना ऋण लिए कभी अपने यहाँ आये हुए मेहमान को खिला न सके, या किसी मंगते को भिक्षा न दे सके वह 'दरिद्र' है। परन्तु यह दरिद्रता की हद आजकल नहीं है। यह ब्रिटिश-राज में इस दर्जे पर पहुँच गई है कि हम पहले जमाने में दरिद्रता की जो परिभाषा करते थे वह भारत के आजकल के मध्यम वर्ग पर लगती है। जिनकी आमदनी साल में पाँच-छः सौ रुपये में कम नहीं है, या यों कहिये कि जो लोग साल भर में लगभग उतना कमा सकते हैं, जितना

*यह समाचार कई पत्रों में छपा था; परन्तु न तो मैंने इसका कोई खंडन देखा और न इसके अधिक वृत्तांत मिले।

कि पार्लमेंट का दरिद्र मजूर सदस्य हर महीने पाता है। जिन लोगों की आमदनी साल में ५००) से कम है, उनके लिए 'दरिद्र' से भी अधिक दरिद्रता की हद बतानेवाला शब्द होना चाहिये। हमारी समझ में यह शब्द 'कंगाल' है।

हर आदमी यह अधिकार ले कर दुनिया में पैदा होता है कि वह अपने शरीर को भला-चंगा रखे और अपने परिवार, समाज, देश और साथ ही अपने को मन, वचन, कर्म से अधिक-से-अधिक लाभ पहुंचावे और अधिक-से-अधिक सुख दे, और इन बातों को पूरा करने के लिए उसे पूरी-पूरी योग्यता और स्वतंत्रता का अवसर मिले। समाज में इन जन्ममिद्ध अधिकारों को काम में लाने के लिए, उसका रहन-सहन एक निश्चित ऊंचाई और अच्छाई का होना चाहिये। हमारे देश का रहन-सहन अनादि-काल से बहुत सादा चला आया है। हमारे मजदूर और किसान मोटर और विमान रखने वाले कभी न थे; परन्तु ब्रिटिश-राज्य ने पहले इस दर्जे की दरिद्रता भी न थी। किसान लोग खाने-पीने से खुश थे।

अमेरिका का एक प्रामाणिक लेखक 'दरिद्रता' की परिभाषा या करता है:—दरिद्रता जीवन की वह दशा है जिसमें आदमी अपने कम आमदनी के या बेसमझी के खर्च के कारण ऐसे रहन-सहन से गुजर नहीं कर सकता, जिसमें कि अपने समाज की हद के अनुसार वह आप और उसके परिवारवाले उपयोगी काम कर सकें। और वह आप शरीर से और मन से पूरा-पूरा उपयोगी बन सके।" वही लेखक कहता है कि "कंगाल होना जीवन की वह अवस्था है जिसमें आदमी पूरा-पूरा या थोड़ा-बहुत अपने खाने-कपड़े के लिए ऐसे किसी आदमी का मोहताज हो जो स्वभाव से या कानून से उसका सहायक न समझा जाता हो।"*

*Gillin, J. L., "Poverty and Dependency" PP. 24. The Century Company New York, 1926. (A. W. Hayes की Rural Sociology. Longmans, 1929, PP. 430 से उद्धृत)

हमारी समझ में श्री गिलिन की ये परिभाषाएं बिलकुल साफ हैं। अगर उन्होंने कम आमदनी या बेसमझी के खर्च की शर्त न लगाई होती तो 'दरिद्रता' की उनकी परिभाषा हमारे गुलाम देश के लिए भारतीय धनकुबेरों पर भी लग सकती थी। स्वर्गीय गोखले ने कहा था कि भारतवर्ष में ब्रिटिश-राज ने तरक्की के रास्ते को ऐसा बन्द कर रक्खा है कि यहां के ऊंचे-ऊंचे आदमी को भुक् जाने को लाचार कर देता है। यहां कोई आदमी पूरी उपयोगिता को पहुँच ही नहीं सकता; परन्तु गिलिन की परिभाषा हमारे यहां के पहली श्रेणी के लोगों को छोड़कर बाकी सारे देश पर लग जाती है। इस तरह भारतवर्ष की साढ़े निग्यानवे प्रतिशत आबादी दरिद्र है। जिनको अपनी मेहनत-मजूरी से आधे पेट या दूसरे-तीसरे दिन भी भोजन मिल जाता है, उन दरिद्रों में भी इज्जत का ख्याल इस दर्जे का है कि वे किसी के सामने हाथ पसारने से मर जाना ज्यादा अच्छा मानते हैं। वे अपनी आंखों के सामने अपने प्यारों का भूख से तड़पना देखते हुए भी भिक्षा मांगने का अधम काम कबूल नहीं करते। इतना होते हुए भी बत्तीस करोड़ की दरिद्र आबादी में तीस लाख से कुछ ही ज्यादा भिखमंगों, आवारों, वेश्याओं आदि लाचार निर्लज्जों का होना कोई अचरज की बात नहीं है।

दरिद्रता के इस स्थूल-रूप पर विचार करने के बाद हम आगे क्रम से इस बात पर विचार करेंगे कि इस घोर दरिद्रता के क्या-क्या बुरे असर राष्ट्र पर पड़ चुके हैं, हम किन-किन कड़वे फलों का अनुभव कर चुके हैं।

२. आबादी पर प्रभाव

दरिद्रता का सबसे बुरा असर आबादी पर पड़ता है।

१. भूख के सताये हट्टे-कट्टे काम करने वाले गाँवों से भाग कर, नजदाक और दूर के शहरों में चले गए और कुली का काम करने लगे, चाय के बागों में गुलामी करने लगे या दूर-दूर विदेशों में चले गये और वहीं मर-खप गए। इस तरह जो खेती के काम में कुशल थे, गाँवों से निकल गये, और जो काम में कुशल नहीं थे, रह गये; जिससे खेती का काम दिन-ब-दिन

बिगड़ गया । गरीबी के कारण बालकों को शिक्षा न मिल सकी और गांवों में पढ़ाने का बंदोबस्त न हो सका ।

२. कुछ तो शिक्षा न मिलने से और कुछ पूरी सफाई और तंदुरुस्ती का बंदोबस्त न हो सकने से, जिसमें बिना धन काम नहीं चल सकता था, अनेक तरह के रोग फैल गए, जिनसे आये दिन अनगिनत आदमी मरते जाते हैं और आबादी घटती जाती है ।

३. दरिद्रता के कारण अकाल पड़ जाता है और लोग भूखों मर जाते हैं । अन्न के न होने से लोग नहीं मरते । अड़ोस-पड़ोस के बाजारों में गाड़ियों अन्न आता है और बराबर बिकता रहता है, परन्तु अकाल से पीड़ित भुक्खड़ों के पास खरीदने को दाम नहीं होता, इसलिए भूखों मर जाते हैं । पैसे सस्ते हैं फिर भी किसानों को कोई काम नहीं मिलता, जिससे वे पैसे कमा सकें । जिस साल अच्छी फसल होती है, उस साल तीन महीने में लेकर छः महीने तक उन्हें काम रहता है, और खेत मजूरी देता है । जिस साल फसल नहीं होती उस साल बारह मास की बेकारी है । मजूरी कौन दे ? असल में अन्न का अकाल नहीं है । मजूरी के थोड़े अकाल में तो किसान सारा जीवन बिताता है, पूरा अकाल तो उस समय होता है, जब फसल भी जवाब दे देती है ।

४. दरिद्रता के कारण आपस के लड़ाई-भगड होते हैं, और परिवार अलग-अलग होने से अपना-अपना खर्च न सभाल सकने के कारण उजड़ जाते हैं, खेती-बारी टूट जाती है, इस तरह गांव की आबादी घटती जाती है ।

३. आदमियों पर प्रभाव

दरिद्रता सब दोषों की जड़ है, जिसके पास धन है वही कुलीन समझा जाता है, वही धर्मात्मा माना जाता है, वही विद्वान और गुण-ग्राहक होता है, उसीकी बात सब लोग चाव से सुनते हैं, लोग उसके दर्शनों को जाते हैं । दरिद्र को कोई नहीं पूछता ।

दरिद्रता के कारण—

१. होसले के साथ लोगों में किसान मिलता-जुलता नहीं, उसमें बेढंगापन आ जाता है।

२. धूर्तों के बहकाने में जल्दी आ जाता है। जितनी चाहिए उतनी सफाई नहीं रख सकता।

३. खाने को न वक्त से पाता है और न उचित मात्रा में पाता है, इससे दुबला और कमजोर हो जाता है। उसकी चाल सुस्त हो जाती है, भरपूर मेहनत नहीं कर सकता, थोड़े से काम में थक जाया करता है, भांति-भांति के रोगों का शिकार होता है, उसका जीवन कम हो जाता है।

४. उसका होसला दिन-ब-दिन पस्त होता जाता है और रहन-सहन का परिणाम घटता जाता है।

५. बाल-बच्चों के सांसारिक बोझ से जल्दी छुटकारा पाने के लिए थोड़ी ही उम्र में ब्याह कर देता है और पास की नातेदारियों में ही ब्याह करके वंश को और भी खराब कर देता है।

६. ब्याह न कर सकने के कारण व्यभिचार में फंस जाता है और वर्णसंकर पैदा करता है। बच्चे बहुत पैदा होते हैं; परन्तु पैदायश के समय काफी मदद न मिलने के कारण बहुत से बच्चे सौर में ही मर जाते हैं और दूध आदि पालन-पोषण का सामान न मिलने से छुटपन ही में बच्चे माता की गोद सूनी कर देते हैं।

७. अनेक दुखिया भुक्खड़ नातेदार, जिनको कहीं ठिकाना नहीं लगता, गरीब किसान के घर जबरदस्ती आकर रह जाते हैं। इस तरह उनके कष्ट और भी बढ़ जाते हैं।

८. उसका कुटुम्ब अक्सर बड़ा होता है। जितना ही बड़ा कुटुम्ब होता है, उतनी ही बेकारी बढ़ती है।

९. वह ज्यादा पोतवाला अच्छा खेत नहीं ले सकता। खराब खेत ज्यादा मेहनत चाहते हैं जो वह बेचारा कर नहीं सकता।

१०. चिंताओं से उसका दिमाग खराब हो जाता है।

११. उसमें धर्म-भाव और देश-भक्ति के हौसले नहीं रह सकते ।

१२. उसे देश की दशा का और अपनी दशा का ज्ञान नहीं रहता, इसलिए चुपचाप दुःख में घुलता रहता है, और कर्मवादी रह जाने के सिवा कोई पुरुषार्थ नहीं कर सकता ।

१३. स्वभाव चिड़चिड़ा हो जाता है, आये दिन परिवार के भीतर और बाहर भगड़े होते रहते हैं, जिसका फल होता है फौजदारी, मुकदमेबाजी और गृहस्थी का सत्यानाश ।

१४. भांति-भांति की चिताओं से छुटकारा पाने के लिए तरह-तरह के नशों की कुटेव लग जाती है । तमाखू, गांजा, शराब, ताड़ी, अफीम आदि के पीछे तबाह हो जाता है ।

१५. औरों की निगाहों में उसकी इज्जत घट जाती है ।

४. रहन-सहन पर असर

हमारे देश के किसान का रहन-सहन कितना नीचे गिर गया है, इसे सब जानते हैं ! उसके पास जैसे खाने का टोटा है : वैसे ही पहनने का भी । उसके पुरखों के समय में जब चरखा चलता था तब उसे कपड़ों का टोटा न था, आज खाना-कपड़ा दोनों का टोटा है । तीसरी जरूरी चीज घर है । अब वह घर भी अपने लिए दरिद्रता के कारण अच्छा नहीं बना सकता । वह जीते जी नरक भोग रहा है ।

अपनी दरिद्रता के कारण —

१. अपनी उपज का सबसे अच्छा माल बेच डालता है, और खराब-से-खराब अपने खर्च के लिए रख लेता है । जो शायद बिक ही नहीं सकता या लाचारी उसे बेचने नहीं देती ।

२. उसका भोजन अक्सर बे-नमक का होता है । बेचारा नमक तक खरीदने की सामर्थ्य नहीं रखता । जिसकी आमदनी ६ पैसे रोज से भी कम हो, वह नमक-मिर्च कहाँ पावे ।

३. उसके भोजन में पालन-पोषण का तत्व बहुत कम होता है ।

४. वह काफी भोजन नहीं पाता, कभी आधा पेट पाता है और कभी वह भी नहीं।

५. उसे दूध, घी, मठा तो क्या मिलेगा, उसके बच्चों को छाछ भी नसीब नहीं होती।

६. उसके ढोर भूखों मरते हैं, उनके लिए घर नहीं होता।

७. उसके घर उसे धूप, बरसात, आंधी, तूफान और जाड़े से बचाने के लिए काफी नहीं होते।

८. जंगलों और पेड़ों पर कोई अधिकार न होने से उसे जाड़े के लिए काफी ईंधन नहीं मिलता और वह लाचार हो उपले जलाने का आदी हो गया है, जिससे खेत के लिए उत्तम-से-उत्तम खाद वह चूल्हे में जला देता है। परिस्थिति ने उसे भुलावा दिया है।

९. उसके पास काफी कपड़ा नहीं है, और जो है वह विलायती है, जो काफी टिकाऊ नहीं होता, मगर सस्ता होने के कारण लिया जाता है।

१०. उसकी खेती का सामान बढ़िया नहीं है पूरी मेहनत करके भी उससे वह इतना अच्छा काम नहीं ले सकता जितना कि अच्छे हल-बैल से होता।

११. उसे अपने रोजगार के बढ़ाने का कोई साधन प्राप्त नहीं होता।

१२. मजूरी की दर बहुत कम होने से किसान को ऐसे काम के लिए मजूर नहीं मिल सकते, जिन्हें वह अकेला नहीं कर सकता और वहाँ लड़कों और औरतों की मदद काफी नहीं होती।

१३. अपने खेतों पर जो मजूरी की जाती है उसका बदला भी बहुत थोड़ा मिलता है।

१४. वह गाय पाल नहीं सकता और न छोटे-मोटे घरेलू रोजगार कर सकता है करे भी तो दशा ऐसी है कि रोजगार में सफलता नहीं मिलती।

घर-गृहस्थी में किसान और उसका परिवार अपने दादा के समय में आज की तरह बेकार नहीं रहता था। खेती से जो समय बचता था उसमें मजबूत हाथ-पैरवाला किसान और मेहनत के काम किया करता था।

गाड़ी चला कर थोक-का-थोक माल बाजार ले जाना, खंडसाले चलाना, रुई धुनना, गाय, भैंस आदि बड़े ढोर पालना, सन, पटसन आदि बटना, टोकरियाँ बनाना आदि अनेक तरह के काम देहातों में सब तरह के लोग करते थे। इसके अलावा पेशेवाले किसान, कुम्हार, लुहार, बढ़ई आदि तो अपने काम करते ही थे, ये पेशेवाले तो थोड़ा-बहुत अब भी अपना काम करते ही हैं। इसके सिवा इनके घर की स्त्रियाँ और लड़के भी तरह-तरह के काम करते थे। घर की गाय, बकरी, भेड़ आदि की सेवा में लड़के बड़ी मदद पहुँचाते थे। स्त्रियाँ और लड़कियाँ दूध, दही, मक्खन आदि के काम करती थीं, चर्खा कातती थीं, धान आदि कूटती थी, मक्खन निकालती थीं, आटा पीसती थीं, कपड़े सीना, रंगना और बच्चों का लालन-पालन, चोका-बर्तन, रसोई, ये सारे काम घर में होते थे। परन्तु आज गौवों का पालन करने की सामर्थ्य न होने से दूध, दही, मक्खन, घो का काम उठ गया है। चर्खा और ओटनी को उठ गये दो पीढ़ी के लगभग हो गए। घी-दूध और कपास का काम जो घर में होता था किसान के लिए बड़े लाभ की चीजें थीं। घी दूध से परिवार भी तृप्त होता था और पैसे भी आते थे। ओटनी और चर्खे से परिवार का तन भी ढकता था और पैसे भी आते थे। इसके सिवा पेशेवालों के गाँव-के-गाँव होते थे, जो आज उजड़ गये हैं। जहाँ कहीं खहर बनाने की कला बढ़ी हुई थी, जहाँ कोरी कोष्ठी, तांती और जुलाहे आदि बुनकरों की बड़ी-बड़ी बस्तियाँ थी। ये बस्तियाँ उजड़ गईं जो थोड़ी बहुत बची हुई है, विलायती सूत में उलभी हुई हैं। ग्वालों के गाँव-के गाँव थे, जिनके यहाँ दूध घो का भी रोजगार था और खेती भी होती थी। बहुत से ऐसे गाँव उजड़ गए और जो बचे हुए हैं उनकी दरिद्रता आँखों में खून लाती है। यों गाँव-गाँव में जहाँ सभी जाति और पेशे के किसान मिल-जुलकर रहते थे, गहाँदो-एक घर खहर बुनने वालों के भी थे, और हफ्ते के दिनों में जहाँ बजार लगा करते थे सूत, कपास और खहर का लेनदेन और बिक्री हुआ करती थी। रोजगार के अच्छा होने से लोगों के रहन-सहन का परिमाण बढ़ा हुआ था, रोजगार टूट जाने से रहन-सहन का परिमाण गिर गया।

५. शिक्षा पर प्रभाव

पहले गाँव-गाँव में टोल थे, पाठशालाएं थीं। गाँव के भैयाजी सब बालकों को पढ़ाते थे। गाँव के सभी किसान बालक थोड़ा लिखना पढ़ना और हिसाब-किताब सीखते थे। टोलों, पाठशालाओं के खर्च के लिए माफी के खेत थे उनकी आमदनी से पढ़ाई का खर्च चलता था। गाँव वाले मास्टरों को सीधे देते थे और अधिकांश पंचायत के द्वारा सारा खर्च दिल-वाया जाता था। पढ़ाई के लिए कहीं कहीं घर होते थे, कहीं चौपालों में जगह होती थी, कहीं मन्दिरों और मठों में और कहीं-कहीं बागों में। जब पंचायतों का अधिकार छिन गया, माफी के खेत छिन गए, किसान दरिद्र हो गए, तब सारा बंदोबस्त टूट गया। कुछ काल तक शिक्षा का महत्व समझने वाले किसानों ने अधिकांश इसके दुक्को ने, अपनी ओर से बच्चों के पढ़ने का प्रबन्ध जारी रखा। कहीं-कहीं बेहरी लगाकर कुछ समय तक पाठशालाएं ठहरीं; परंतु ठीक संगठन न होने से इस तरह के निजी उद्योग समाप्त हो गए। दरिद्रता के कारण—

१. गाँववाले बच्चों के पढ़ाने का बंदोबस्त नहीं कर सकते। जो स्कूल डिस्ट्रिक्ट बोर्ड ने कायम किये हैं वे बहुत कम हैं, दूर-दूर पर हैं जहाँ छोटे-छोटे बच्चे नहीं पहुँच सकते, इसलिए देश के बच्चों की बहुत थोड़ी गिनती तालीम पा सकती है।

२. जिन थोड़े से बच्चों को तालीम दी जाती है उन्हें किसानों के काम की कोई शिक्षा नहीं मिलती, क्योंकि किसानों को डिस्ट्रिक्ट बोर्ड में शिक्षा के बारे में अपनी नीति चलाने का कोई अधिकार नहीं है, और उनके पास वे साधन नहीं हैं कि काम की शिक्षा दे सकें।

३. वे अपने पढ़नेवाले बच्चों को खेती का काम नहीं सिखा सकते। पढ़नेवालों को ऐसी शिक्षा दी जाती है कि वह शिक्षा पाकर खेती आदि के कामों को नीच समझने लगते हैं। कस्बों और शहरों में हलकी नौकरियों के पीछे ठोकें खाते फिरते हैं।

४. खेतों की शिक्षा न होने से खेती का काम दिन-पर-दिन खराब होता जा रहा है।

५. किसान इतने गरीब हैं कि बच्चों के लिए किताब मोल नहीं ले सकते ।

६. वे अपने लिए कोई अखबार नहीं खरीद सकते, जिससे खेती का, रोजगार का या दुनिया का कुछ हाल जान सकें ।

७. वे देश के आंदोलनों की खबर नहीं रखते ।

८. वे अपनी ही दशा नहीं जानते, और न उसके सुधारने के लिए कोई आंदोलन कर सकते हैं ।

९. वे अपनी ओर से शिक्षक नहीं रख सकते जो उनके नेता का काम कर सके और प्रजाहित के कामों में मदद दे ।

१०. वे आपस में किसी को नेता के काम के लिए तैयार नहीं कर सकते ।

११. उनकी बहुत बड़ी संख्या निरक्षर हो गई है और निरक्षरता के जितने बुरे परिणाम हैं, वे सब भोग रहे हैं ।

१२. बालको को ऊंची शिक्षा का कभी अवसर नहीं मिलता ।

१३. खेती की शिक्षा न मिलने से लाभ कम होता है । लाभ न होने से खेती का सुधार नहीं होता सुधार न होने से दरिद्रता बढ़ती जाती है । दरिद्रता बढ़ते जाने से आगे शिक्षा की भी कोई आशा नहीं हो सकती । यह बड़ा ही दूषित भ्रामक चक्र है, जिसमें सारा देश फंसा हुआ है ।

६. जायदाद पर प्रभाव

जब किसान खुशहाल था, तब उसकी गृहस्थी बड़ी होती थी, घर बड़े और हवादार थे, सब ऋतुओं के अनुकूल बने हुए थे । गोशाला थी, बाग, कूप, तालाब, मन्दिर, चौपाल सब कुछ था । पशुओं के चरने के लिए गोचर-भूमि अलग होती थी । किसान और उसके पशु खुश रहते थे । आज सारी दशा विपरीत है ।

दरिद्रता के कारण —

१. वह हवादार और अच्छे घर नहीं बना सकता, जीवन के आवश्यक सामान नहीं जुटा सकता ।

२. वह लाचार होकर उपले जलाता है, क्योंकि न लकड़ी खरीद सकता है, न निर्धनता के कारण पेड़ मोल ले सकता है, न जमींदार से पेड़ लगाने या काटने के लिए आज्ञा मोल ले सकता है और न विदेशी सरकार की बाधा के कारण जंगल से लकड़ी काट सकता है। इस तरह उसे खेत के लिए सबसे उत्तम खाद खोना पड़ता है।

३. उचित खाद के बिना खेत की पैदावार दिन-पर-दिन घटती जाती है।

४. वह खेत का मालिक नहीं है और जानता है कि खेत की दशा बहुत अच्छी हो गई तो लगान बढ़ जायगा, या बेदखली हो जायगी, या बन्दोबस्त पर सरकारी मालगुजारी बढ़ जायगी। इसलिए खेत में सुधार करने का उसे हौसला नहीं हो सकता।

५. वह अपने गाय, भैंस, बैल का ठीक-ठीक पालन-पोषण नहीं कर सकता।

६. जो पहले गोचर-भूमि थी वह अब खेत हैं। ढोरों की चराई का बन्दोबस्त अच्छा नहीं है जिससे ढोर बहुत दुबले हो गए हैं।

७. लोग गो-पालन-रोजगार में टोटा होने से उस ओर ध्यान नहीं देते, इससे यह कारोबार चौपट हो गया।

८. गोवंश-सुधार की रीतियां भूल जाने से ढोरों की नसल खराब हो रही है।

९. फलों का रोजगार ठीक रीति से न होने के कारण लोगों का ध्यान अच्छे बाग लगाने या बाग की रक्षा पर नहीं है।

१०. आपस में लड़ाई-झगड़ा होने के कारण बहुत छोटे-छोटे हिस्सों में बँटवारा हो रहा है, एक खेत घर के पास है तो दूसरा मील भर दूर, तीसरा उससे एक फर्लांग पर, इस तरह इकट्ठी खेती करने का मौका नहीं है। दूसरे सब मर्दों में खर्च बढ़ता है और रखवाली ठीक तौर पर नहीं हो सकती।

११. खेती के औजार पुराने और दकियानूसी हो गए हैं और नये और अच्छे खरीदे या बनवाये नहीं जाते।

माली हालत किसानों की इतनी खराब है कि वे बाप-दादों की जायदाद

को धीरे-धीरे खोते जाते हैं, उनके पास धन नहीं है कि अपनी भागती हुई जायदाद को चतुर साहूकार के चंगुल से बचा सकें।

७. तन्दुरुस्ती पर असर

पहले के किसान शहर के लोगों के मुकाबले अधिक हृष्ट-पुष्ट और तन्दुरुस्त समझे जाते थे; पर आज वह चलती फिरती हुई ठठरियां हैं, जिनके चेहरे पर उदासी है। जान पड़ता है कि उन्होंने हँसी-खुशी के दिन नहीं देखे हैं और श्मशान की ओर चले जा रहे हैं। दरिद्रता के कारण—

१. अपनी तन्दुरुस्ती पर वे उचित ध्यान नहीं रख सकते।
२. कभी-कभी उन्हें खेतों में कमर तोड़ परिश्रम करना पड़ता है, परन्तु साल में अधिक बेकार ही रहना पड़ता है। इस असयम से बच नहीं सकते।
३. पोषण काफी नहीं होता, इसलिए जीवन-शक्ति कम होती है और रोग का मुकाबला नहीं कर सकती।
४. रोग के कीड़े उनके शरीर में जल्दी फैलते और घर कर लेते हैं।
५. पेट के कीड़े और चुनचुने उन्हें ज्यादा होते हैं।
६. ठीक भोजन न मिलने से तरह-तरह के चर्म-रोग हो जाते हैं।
७. फैलनेवाले रोग जब फैलते हैं तो काबू में नहीं आते।
८. किसान लोग रोग की भयानकता समझते हुए भी उससे बचने का उपाय नहीं कर सकते।
९. कपड़ा काफी न होने से फसली बीमारियां होती रहती हैं।
१०. घरों में काफी बचाव नहीं होता।
११. मलेरिया से बचने के लिए वे मसहरियां इस्तेमाल नहीं कर सकते।
१२. घरों में हवा और रोशनी का काफी बंदोबस्त नहीं हो सकता।
१३. खाने-पीने के लिए पानी बहुत गंदा आता है। साफ और शुद्ध जल का बन्दोबस्त अनेक स्थानों पर नहीं हो सकता। तालाब का पानी हर तरह गंदा होता है और कुएं गहरे नहीं होते तो परनालों की गंदगी कुएं के

पानी में मिल जाती है। शुद्ध पानी का खर्चीला बंदोबस्त नहीं किया जा सकता ।

१४. स्वास्थ्य-शिक्षा की शिक्षा उन्हें नहीं मिलती ।

१५. बच्चे बड़ी-संख्या में मरते हैं ।

१६. दवा-इलाज की सहायता नहीं मिलती ।

१७. अच्छे वैद्य-हकीम गांवों में नहीं मिलते । बीमार होने पर दवा-इलाज का खर्च उठा नहीं सकते ।

१८. अस्पताल बहुत दूर पड़ते हैं ।

१९. देहातों में घूमनेवाले डाक्टर न तो समय पर पहुँच सकते हैं, न काफी मदद करते हैं और न इस अनमोल मदद का लाभ ज्यादा लोग उठा सकते हैं ।

२०. लोगों की औसत उमर घटकर २८ वर्ष हो गई है ।

२१. शरीर के पोषण के लिए जितने पदार्थ चाहिए उनमें मुख्य नमक है जो अनेक रोगों से रक्षा करता है । यह नमक आमदमी को काफी नहीं मिलता और ढोरो को तो बिल्कुल नहीं मिलता, क्योंकि किसानों की थोड़ी आमदनी के लिए वह बहुत महंगा है ।

२२. ढोरो में बीमारियां फैल जाती हैं, मगर किसान इलाज नहीं कर सकता ।

२३. जहां ढोर बाँधे जाते हैं, वहां की काफी सफाई किसान नहीं कर सकता ।

२४. बीमारियों से ढोर मर जाते हैं और दूसरे ढोरो में बीमारी फैल जाती है, इस तरह किसान का कई तरह का नुकसान हो जाता है ।

२५. ढोरो की बीमारी में डिस्ट्रिक्ट बोर्ड से मदद का लाभ बहुत कम उठा सकता है ।

जब गांवों का बंदोबस्त पंचायत के हाथ में था, गांव में वैद्य भी होते थे, और दवा-इलाज का बंदोबस्त अपना होता था । उसके सिवाय शिक्षा ऐसी थी कि ग्वाले और गृहस्थ किसान शालिहोत्री और डाक्टर का बहुतेरा काम

जानते थे। धाय का काम, तात्कालिक चिकित्सा और दवा-दर्पण घर-घर बूढ़े किसान और घर की बाल-बच्चों वाली स्त्रियाँ इतना काफी जानती थीं कि डाक्टर और अस्पताल की मोहताज न थीं। परन्तु पुरानी शिक्षा की विधि उठ गई और बस्ती के उजड़ने से भी परम्परा और अभ्यास दोनों की हानि हुई।

८. माली दशा पर प्रभाव

इस विषय में तो पिछले पृष्ठों में हम 'सरकारी लगान नीति' उसकी रकमें और उसके वमूल करने की विधि इत्यादि पर विचार कर चुके हैं। सारी दरिद्रता का प्रधान कारण तो वह स्वार्थी नीति है जिसका व्यवहार भूमिकर के सम्बन्ध में किया जाता है। वही तो किसान की दरिद्रता का प्रधान कारण है। दरिद्रता के कारण —

१. सिंचाई का वह काफी प्रबन्ध नहीं कर सकता और वर्षा के भरोसे रह जाता है। वर्षा न हुई तो फसल गई।

२. वह अकेले मेहनत करता है। मजूरी न दे सकने के कारण या मजूर न मिलने के कारण उसकी खेती जितनी चाहिए उतनी सफल नहीं होती।

३. पैदावार के मुकाबले लागत-खर्च खेती में ऊँचा पड़ता है, क्योंकि वह अच्छे औजार नहीं काम में ला सकता। उसके खेत दूर-दूर हैं और टुकड़े-टुकड़े हैं। उसके बैल दुबले हैं, और अनाज इसीलिए कम उपजता है।

४. जरूरत पड़ने पर उसके पास कोई जमा रकम नहीं है, जो लगा सके। पहले जमाने में उसकी औरत के गहने उसके लिए बैंक के समान थे। अब वह गहने भी नहीं बनवा सकता।

५. लगान या मालगुजारी देने के समय उसे लाचार होकर साहूकार से कर्ज लेना पड़ता है, और खेत रहन रखना पड़ता है। किसानों पर लगभग आठ अरब के कर्ज लदा हुआ है।

६. आयेदिन की मुकदमेबाजी से किसान परेशान रहता है, और अधिक-से-अधिक लुटता जाता है।

७. गांजा, ताड़ी शराब की कुटेव में फंसता है और तन-मन-धन और धर्म सब खो देता है।

८. शादी, गमी, काम-काज में वह अपनी हैसियत से ज्यादा खर्च करता है, और कर्ज से लद जाता है।

९. वह अपने लिए जरूरी कपड़े भी नहीं खरीद सकता। उसकी खरीदने की ताकत बहुत कम हो गई है।

१०. काबुली, बलूची, पठान और दूसरे व्यापारी उसे जाड़े के शुरू में दूने-तिगुने दामों पर उधार कपड़े देकर ठगते हैं और जाड़ा बीत जाने पर बड़ी कड़ाई से वसूल कर लेते हैं।

११. खेती के और सामान भी वह नकद नहीं खरीद सकता। उधार के कारण उसे बहुत ठगाना पड़ता है।

१२. खेती की उपज दिन-दिन घटती जाती है। वह उपज बनाये रखने के लिए उपाय नहीं कर सकता।

१३. लगान की दर इतनी ऊंची है कि आधे से ज्यादा खेत का मुनाफा निकल जाता है, और उसे अपनी लागत का खर्च और उस पर का सूद मुश्किल से मिलता है। फसल अच्छी न हुई तो वह भी गया।

१४. वह कांग्रेस का चंदा नहीं दे सकता और अपना प्रतिनिधि कांग्रेस में नहीं भेज सकता।

१५. गांव में शिक्षा, रक्षा और मन-बहलाव के लिए जो उपाय वह पहले कर सकता था, अब नहीं कर सकता।

१६. बुढ़ापे के लिए और अनाथों और विधवाओं के लिए कोई बन्दोबस्त नहीं कर सकता।

१७. आग लगने पर, बाढ़ आने पर और ओले पड़ने पर वह कोई उपाय नहीं कर सकता। बीमे के लिए उसके पास धन कहाँ है?

१८. उसकी औसत आमदनी छः पैसे रोज है। इतनी थोड़ी आमदनी पर वह आधा पेट मुश्किल से खा सकता है। और जरूरतों की कोई चरचा नहीं।

१६. वह साल में औसत छः महीने तक बेकार रहता है। उस बेकारी की दशा को 'फुरसत' नहीं कह सकते। दरिद्रता के कारण इससे फुरसत का सुख वह नहीं उठा सकता।

२०. उसके अनेक रोजगार छिन गए हैं। विदेशियों की बढ़ा-ऊपरी से, विदेशी सरकार होने के कारण उसके रोजगारों की रक्षा होने के बदले विनाश हो गया है। कपास की खेती, ओटना, धुनना, कातना, बुनना बंद हो गया है। खंडसालें बंद हो गई हैं, गोचर भूमि के खेत बन जाने से और जिन्दा गाय-बैल के मुकाबले में चमड़ा, मांस, चर्बी, हड्डी, सींग आदि से ज्यादा दाम मिलने के कारण गोवंश का नाश हो गया और ग्वालों का रोजगार चोपट हो गया। ये सारे रोजगार नष्ट हो जाने से किसान के आधे जीवन की बेकारी पर मोहर लग गई।

किसान की माली हालत लिखने लायक नहीं है। देखने को आंखें नहीं रह गई हैं। सोचने से कलेजा मुँह को आता है। इस माली हालत को हम शून्य नहीं कह सकते। यह शून्य से इतना कम है, कि आठ अरब रुपये के आगे ऋण का एक बहुत मोटा-सा चिन्ह लगा हुआ है। यह माली हालत दरिद्रता के कारण नहीं है, बल्कि सारी दरिद्रता का कारण है।

६. धर्म पर प्रभाव

धन का उपभोग करते हुए जो आदमी संसार को असार समझ कर उसका त्याग करता है वह विरक्त कहलाता है, परन्तु संसार में विरक्त बहुत थोड़े हैं और होने भी चाहिए। ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ और संन्यासी संसार में थोड़े ही होते हैं। सबसे ज्यादा संख्या संसार में गृहस्थों की होनी चाहिए, जिनसे बाकी सबका पालन-पोषण होता है। धर्म की सबसे अधिक जिम्मेदारी गृहस्थों पर आती है। भारतीय किसान किसी समय बड़ा ही धार्मिक था। उसके द्वार से भिखारी निराश होकर नहीं लौटता था। होम, जप, तीर्थ, पूजा, त्यौहार और उत्सव उसके जीवन के अंग थे। संसार में उसके बराबर सफाई से रहनेवाला कोई न था। उसकी ईमानदारी और

सचाई जगत में प्रसिद्ध थी। वह अपनी बात पर मर मिटता था। उसके यहां स्त्री-जाति का पूरा सम्मान था। पराई स्त्री को मां, बहन, बेटी समझता था। नशेबाजी की तरफ कभी आँख उठाकर भी न देखता था। जहाँ अन्य देशों के किसान मांस खाने के लिए पशु पालते थे, वहाँ भारतीय किसान अहिंसा—किसी प्राणी का जी न दुखाना और प्राणिमात्र से अपना आपा समझ कर सच्चा प्रेम रखना—अपना परम-धर्म मानता था। गाँवों की विशेष रूप से और पशुओं की साधारण रीति से रक्षा करता था। हम यह नहीं कहते कि भारत में मांस खानेवाले न थे। परन्तु संसार में और देशों के मुकाबले हमारे देश में मांस खाने की चाल बहुत कम थी और इस कमी के कारण हमारे यहां के किसान ही थे। परन्तु आज क्या दशा है? दरिद्रता के कारण धर्म-बुद्धि नष्ट हो गई और सदाचार के बदले कदाचार ने अपनी हकूमत जमाई।

दरिद्रता के कारण—

१. वह आवश्यक दान नहीं कर सकता।
२. तीर्थाटन नहीं कर सकता।
३. व्रत, होम, जप आदि भी नहीं कर सकता।
४. पूजा आदि नहीं कर सकता। और इन कामों में शिथिलता आने से उसके मन से धीरे-धीरे श्रद्धा उठ गई, इसलिए वह मंदिरों में दर्शनों और जल चढ़ाने के लिए बहुत कम जाता है।
५. खेती के सम्बन्ध में होनेवाले अनेक यज्ञ वह नहीं करता।
६. पुरोहितों की रोजी उनका मान कम होने से बहुत करके जाती रही।
७. कथा-पुराण से उसे बड़ी शिक्षा मिलती थी; परन्तु व्यास को दक्षिणा देने के लिए अब उसके पास कुछ भी नहीं है।
८. मंदिरों और शिवालयों की दशा अश्रद्धा के कारण खराब है। आजकल के सुधारक संप्रदायों ने जो धार्मिक खर्च घटा दिया है, केवल इसी कारण वह बिना धार्मिक संप्रदायों में सम्मिलित हुआ, उनकी किफायती रीति बर्तने लगा है। धार्मिक बातों में उसपर किसी का दबाव नहीं है।

सामाजिक बातों में समाज के दबाव के कारण ही कामकाज में बहुत खर्च करने को लाचार हो जाता है ।

९. गांव में अब पुरोहित का होना जरूरी नहीं रह गया है ।

१०. धार्मिक मेले और पूजाओं में दिन-पर-दिन इकट्ठे होनेवालों की गिनती घटती जाती है ।

११. मेलों में जाकर वह केवल धार्मिक काम नहीं करता था । वह मनबहलाव भी करता था और पशु और अपने खेती के सामान आदि भी खरीदता था । पर आज बिना पैसे उसका मेला फीका है ।

१२. वह मुकदमाबाजी में फंस कर धूर्त, भूठा, दगाबाज और बेईमान हो गया ।

१३. उसे अपने स्वार्थ के लिए आज हत्या करने, आग लगाने, जहर देने आदि पापों से हिचक नहीं है । वह भूख के मारे खूखार हो गया है । किसी का दिल दुखाना उसके निकट कोई पाप नहीं रह गया है । देखने में वह अहिंसक अब भी है परंतु उसका कारण प्रेमभाव नहीं है । उसका कारण है उसकी अत्यन्त कमजोरी ।

१४. किसान का अंतरात्मा अभी तक जीता नहीं गया है । वह अबतक उसे बुरे कामों में रोकता है, परंतु वह अंतरात्मा का शब्द न सुनने के लिए अपने को तमाखू, भांग, गांजा, अफीम, ताड़ी, शराब आदि नशों से बेहोश कर लेता है और तब दुराचार में लगता है ।

१५. वह व्यभिचारी हो गया है और स्त्रियों का उसकी निगाहों में पहले का सा सम्मान नहीं रह गया है ।

१६. स्त्रियां बेचारी उसकी पूरी अवस्था नहीं समझतीं और कुछ दरिद्रता और कुछ अशिक्षा के कारण उसकी पूरी सहायता नहीं कर सकतीं । आयेदिन घर में भगड़े होते रहते हैं, और उनका निरादर होता है ।

आजकल नास्तिकता के जमाने में धर्म के ह्रास की इस गिनती पर अनेक पंडितमन्य पाठक मुसकरायेंगे । परंतु जहांतक लेखक को मालूम है, रूस को छोड़कर संसार के सभी देशों में किसान के कल्याण के लिए उसमें

धार्मिकता और नैतिकता का भाव आवश्यक समझा जाता है। हम साम्प्रदायिकता के विरोधी हैं, परन्तु धार्मिकता को राष्ट्रीयता का आवश्यक अंग समझते हैं।

१०. कला पर प्रभाव

कला तो सब तरह के सुख और समृद्धि पर निर्भर है, जहां पेट भर खाने को नहीं मिलता, वहां तो कला की चर्चा ही वृथा है। ऐसा भी कोई न समझे कि कला की जरूरत ही नहीं है। मनबहलाव और व्यायाम, सामाजिक शिष्टाचार, मेले तमाशे और मनोरंजन की सारी सामग्री कला में शामिल है। इन सब बातों का आदमी को आयु की कमी-बेशी पर प्रभाव पड़ता है। दरिद्रता के कारण—

१. खेल-कूद का सब तरह से अभाव हो गया है। बड़े तो खेल को भूल ही गए हैं। भूखे पेट खेल क्या होंगे ?

२. बच्चे भी भूखे बिल्लाते हैं, कबड्डी आदि खेलने को इकट्ठे नहीं होते।

३. बालजीवन सुखमय नहीं है।

४. बच्चों को खेलौने नहीं मिलते।

५. मेले तमाशे बहुत कम होते हैं।

६. पंदल दूर की यात्रा करने का हौसला नहीं है, क्योंकि खाने को नहीं है और मार्ग का सुभीता नहीं है।

७. शाम को कथा-वार्ता नहीं होती, क्योंकि लोग न शिक्षित हैं और न अनुभवी।

८. लोगों के जीवन में रस नहीं रहा, लोग फल के पेड़ नहीं लगाते, गमले नहीं रखते और घर-द्वार संवारने का शौक नहीं रहा।

९. स्त्रियों को चौक पूरने और भीत पर चित्र लिखने का शौक नहीं रहा।

१०. तीज-त्योहारों पर गाने-बजाने का शौक घट गया है, दीवाली

और फाग में अब वह पहले की-सी उमंग नहीं है।

११. संसार की वस्तुओं के सौंदर्य की ओर ध्यान कम है, गाने-बजाने का रिवाज घट गया है।

१२. अपने शरीर को सुन्दर और स्वच्छ रखने की ओर ध्यान नहीं है और हूँ-पुष्ट बनाने का हौसला नहीं है।

१३. जीवन की गाड़ी को घसीट कर मौत की मंजिल तक किसी तरह पहुँचाना ही कर्तव्य मालूम होता है।

वैराग्य में भी ऐसा निर्वेद हो जाता है कि आदमी सांसारिक जीवन में कोई रस नहीं पाता और ऊबकर परमात्मा में चित्त लगा लेता है। परन्तु वह बात दूसरी है। किसान भी अपने जीवन में ऊब गया है, परन्तु इसलिए नहीं कि उसका चित्त परमात्मा में लग गया है। उसके निर्वेद का कारण भक्ति नहीं है, उसका कारण है भूख। जो जीवन की सबसे बड़ी जरूरत है—अर्थात् भोजन, वही उसे लाख जतन करने पर भी नहीं मिलता। भारत का किसान आजकल कुराज्य के प्रभाव से नरक-यातना भोग रहा है।

जामु राज प्रिय प्रजा दुखारी,
सो नृप अवसि नरक अधिकारी।

अच्छे राजा को प्रजा प्यारी होती है, क्योंकि प्रजा (प्रकृति) को प्रसन्न रखने से (रंजनात्) ही राजा कहलाता है। विदेशी राजा को यहां की प्रजा उसी तरह प्यारी है जिस तरह मांस खाने वाले को बकरी। परन्तु विदेशी हकूमत की नीति उसी के लिए अन्त में घातक है। मुर्गी से एक सोने का अंडा नित्य लेना लाभकारी है। मारकर सब अंडे एक साथ ले लेना, अथवा अंडे देने की ताकत को नष्ट कर देना, बुद्धिमानी का काम नहीं है। विदेशी हाकिमों में अंधे स्वार्थ के मुकाबिले दूरदर्शिता अधिक होती तो वे अपनी सारी कोशिश इस बात में लगा देते कि भारत की खरीदारी की ताकत नित्य बढ़ती जाय, और हमारा माल खपता जाय। वे अपने यहां के स्वार्थी सिविलियनों के द्वारा भारत के धन को फिजूलखर्जी में न लगाते।

भूमिकर बहुत हलका लेते । किसान सुखी रहता, वह विलायती का बहुत अच्छा ग्राहक होता और इस तरह विलायती के माल तैयार करने वाले शायद आजकल से अधिक धन खींच ले जाते । शुद्ध और सच्चे व्यापारी की नीति बुरी नहीं है, परन्तु बेईमान और ठग व्यापारियों की नीति अंत में उन्हींके लिए घातक होती है । इस घड़ी किसान के सिर पर दरिद्रता का बोझ असह्य हो गया है । दम नाकों में आ गया है । एक-एक क्षण की देर उनके लिए दूभर है । उनकी खरीदारी की ताकत नष्ट हो जाने से देश का भीतरी व्यापार भी बुरी दशा में है । दरिद्रता की दशा में पाप और व्यभिचार का परनाला देहातों से बह-बह कर चारों ओर से शहर में आकर सिमटता है, जहां बस्ती घनी है और आदमी व्यसनी हैं । फल यह होता है कि दरिद्र देहातों से घिरे हुए शहर गंदगी की खान हो जाते हैं । *शहरवालों पर प्रत्यक्ष कर कम

*मिस मेयो ने अपनी अमर अपकीर्ति 'मदर इण्डिया' में जो भारत के गंदे चित्र खींचे हैं उनकी अत्युक्ति को भी हम सच मान लें तो वह विदेशी शासन की घोरतम निंदा हो जाती है । इसके लिए मिस मेयो के ही देश के लेखी के संपत्तिशास्त्र के भारी-भारी विद्वान् और प्रामाणिक लेखक एक स्वर से यही कहते हैं कि दरिद्रता के कारण सभी तरह के पातक और गंदगियां होती हैं, जो शहरों को भी खराब कर डालती हैं । इनके महाकारण — अर्थात् दरिद्रता — के लिए देश की सरकार ही जिम्मेदार होती है । जो पाठक इस विषय को देखना चाहें वे इन प्रमाणों को स्वयं पढ़ लें—

1. Articles Contributed by Richard T. Ely, and Director of the institute for Research in Land Economics and public utilities.
2. O. F. Hall, Professor of Sociology Purdue University.
3. John A. Ferrell, M. D. International Health Board, and
4. C. E. Allred, Professor of Agricultural Economics, University of Tennessee.

in "Farm income & Farm Life" published by the University of Chicago Press, 1927. 155—189

A w. Hayas : Rural Sociology. Longmans, Green & Co : 1929 Chap XVIII P P. 430-457.

लगे हुए हैं, उनकी दशा इसीलिए कुछ अच्छी है। इसीलिए वे व्यसनों में सहज ही फँस जाते हैं। साथ ही यह बड़े दुःख की बात है कि किसानों की गाढ़े पसीने की कमाई उन शहरों को सजाने और सब तरह सुखी बनाने में विदेशी सरकार आसानी से खर्च कर देती है, जिनसे असल में किसानों को लाभ नहीं होता। एक ओर तो करोड़ों किसान दाने-दाने को तरसते हों और दूसरी ओर १४ करोड़ रुपये लगाकर बिना आवश्यकता के नई दिल्ली के महल बनते हों, यह हृद दर्ज की निठुराई है। शहरों में पानी के बंदोबस्त के लिए या बिजली का बंदोबस्त करने के लिए रुपये पानी की तरह बहा दिये जाते हैं। किसान का बोझ हलका करने के लिए एक अंगुली भी नहीं उठाई जाती।

हमने ऊपर विस्तार से दरिद्रता से पैदा होनेवाले दोष दिखाये हैं। एक दरिद्रता दूर हो जाय, तो ये सारे दोष दूर हो सकते हैं। सुधारक लोग हर दोष को दूर करने के लिए अलग-अलग उपाय करते रहते हैं, पर उन्हें सफलता नहीं होती। जगह-जगह पैबन्द लगाने से काम नहीं चलता। पत्ते-पत्ते पर जल देने से पूरे पेड़ का पोषण नहीं हो सकता। या तो विदेशी सरकार इस दरिद्रता को दूर करे या भारत की प्रजा इस दरिद्रता को पैदा करनेवाली सरकार को दूर करे और अपना बंदोबस्त आप ही करके अपनी पुरानी सुख-समृद्धि को लौटा लावे।

: १२ :

और देशों से भारत की खेती का मुकाबिला

१. सुधारकों की भूल

भारत की खेती की दशा अत्यन्त गिरी हुई है, इस बात से किसी को भी इन्कार नहीं है; परन्तु जो लोग सुधार के उपाय बताते हैं वे अक्सर जापान और योरोप का नमूना पेश करके चाहते हैं कि हमारा देश भी इन्हीं देशों की तरह उन्नति के उपाय करके कम-से-कम समय में सुखी और समृद्ध

हो जाय । वे देखते हैं कि हमारे संयुक्त प्रांत में गेहूँ सींचे हुए खेत में १२ मन प्रति एकड़ और विना सींचे हुए में ५ मन प्रति एकड़ पैदा होता है। वही कनाडा में १३ मन और जर्मनी में १७ मन होता है। इंग्लैंड में एकड़ पीछे भारत का दूना होता है। परन्तु वे इस मुख्य बात को बिलकुल भूल जाते हैं कि इनमें से किसी भी देश में विदेशी राज नहीं है। किसी देश का धन चूस कर पराये देश में नहीं चला जाता, अपने देश की सरकार तन, मन, धन से अपने देश के ही हित में लगी रहती है। जिस दिन सरकार और प्रजा में हित का विरोध होता है, प्रजा तुरन्त सरकार को बदल देती है। फिर इन देशों में सुधार के होने में देर क्या लगे? इसमें सन्देह नहीं कि खेती की कला में संसार में किसी समय भारत सबसे आगे था; परन्तु आज विदेशी हुकूमत की बंदीत सबसे पिछड़ गया है। जो मूल कारण उसके पिछड़ जाने का है उसके होते अपनी खोई दशा को पा जाना कैसे संभव है? फिर भी इस प्रकरण में सुधारकों की शंकाओं के समाधान के लिए हम कुछ देशों से मुकाबिला करेंगे। खेती के सम्बन्ध में अमेरिका संसार में सबसे चढ़ा-बढ़ा समझा जाता है। पहले हम अमेरिका पर विचार करेंगे।

२. अमेरिका की खेती

‘अमेरिका’ साधारण बोलचाल में अमेरिका के संयुक्त राज्यों को कहा जाता है। किसी जमाने में, जिसको आज तीन सौ बरस के लगभग हुए, इंग्लिस्तान में किसानों पर अत्याचार होने लगे थे, और ईसाइयों के ‘भाई संप्रदाय’ पर उनके भाई ईसाई तरह-तरह के जुल्म ढाने लगे थे। उस समय ‘भाई संप्रदाय’ वाले हजारों परिवार पहले-पहल हाल के मालूम किये हुए महाद्वीप अमेरिका में चले गये और बस गए। जिस प्रदेश में बसे उसका नाम ‘नया इंग्लिस्तान’ रक्खा। उसके बाद अपना देश छोड़-छोड़ सताये हुए कुटुम्ब अमेरिका में जाकर बसने लगे। धीरे-धीरे ‘नये इंग्लिस्तान’ की तरह अनेक नये उपनिवेश बन गए, जिनमें अंग्रेजी बोलनेवालों की संख्या ज्यादा थी। इसीलिए ये सभी उपनिवेश अंग्रेजों की जायदाद बन गए और ब्रिटेन

उनसे लाभ उठाने लगा। जब धन चूसने की क्रिया अपनी हृद को पहुँच गई तब वहाँ स्वदेशी और बहिष्कार का आन्दोलन चला और अंत में स्वतंत्रता का युद्ध हुआ, जिसमें इंग्लिस्तान एक तरफ था और बहुत से संयुक्त प्रदेश वार्शिंगटन के नेतृत्व में दूसरी तरफ थे। अंत में वार्शिंगटन विजयी हुआ और संवत् १८३३ में ये संयुक्त राज्य स्वतंत्र हो गये। इस तरह इनको स्वतंत्र हुए डेढ़ सौ बरस हो गये। मोटे तौर से यों समझना चाहिए कि उन्हें स्वतंत्र हुए जितना समय बीता, हमें परतंत्र हुए भी उतना ही समय बीता है। साथ ही मशीनों की उन्नति का आरंभ हुए भी लगभग ७५ बरस बीते हैं और लगभग ६० बरस पहले अमेरिका की खेती प्रायः उतनी ही उपजाऊ थी जितनी आज भारतवर्ष की खेती है। स्वतंत्र अमेरिका को इस तरह अपनी वर्तमान उन्नत दशा को पहुँचाने में ६० बरस लगे हैं। भारतवर्ष की बात जाने दीजिए क्योंकि वह पराधीन है परन्तु इंग्लैंड, फ्रांस, जर्मनी, रूस जो अमेरिका से पहले के स्वतंत्र देश हैं परन्तु उन्होंने भी उतनी उन्नति नहीं कर पाई है जितनी अमेरिका ने की है। इसका कारण क्या है? अमेरिका की परिस्थिति पर विचार करने से इस सवाल का जवाब मिल जायगा।

अमेरिका की आबादी प्रायः गोरों की है, वह शहरोंवाला देश है। उसका क्षेत्रफल ३०,१३,००० वर्गमील है और आबादी साढ़े ग्यारह करोड़ है। इस तरह वहाँ मील पीछे आज ३८ आदमी के लगभग बसते हैं। भारतवर्ष का क्षेत्रफल १३ लाख वर्गमील के लगभग और आबादी पैंतीस करोड़ के लगभग है। इस तरह यहाँ वर्गमील पीछे २६९ आदमी बसते हैं। इस तरह भारतवर्ष की बस्ती लगभग सात गुना ज्यादा घनी है। किसानों की आबादी भारतवर्ष में तीन-चौथाई और जितने लोग खेती के सहारे गुजर करते हैं वे सैंकड़ा पीछे नव्वे के लगभग हैं। इस तरह अकेले किसानों की आबादी अगर ली जाय तो मील पीछे हमारे देश में २३४ किसान बसते हैं। यह बात बिलकुल प्रत्यक्ष है कि हमारे यहाँ अमेरिका के मुकाबिले खेती के लिए धरती कम है और खेती के सहारे जीने वाले अत्यधिक हैं। संवत् १९७८ की मर्दमशुमारी में खेती करनेवालों की गिनती बाईस करोड़ साढ़े नव्वे लाख

के लगभग थी। कुल जमीन जिसमें खेती होती है, लगभग साढ़े बाईस करोड़ एकड़ के है। इस तरह भारत में किसानों के सिर पीछे मुश्किल से एक एकड़ की खेती पड़ती है। संवत् १९६९ में अमेरिका में किसानों के पास सिर पीछे औसत ५५ एकड़ के खेत थे और सिर पीछे २० एकड़ धरती। वहां किसानों की गिनती धीरे-धीरे घटती जा रही है। संवत् १९०७ में कुल आबादी के ६३ प्रति सैंकड़ा किसान थे। संवत् १९७७ में आबादी २९ प्रतिशत हो गई है। इतनी उन्नति होते हुए भी वहां किसानों की संख्या क्यों घटती जाती है? इसलिए कि उद्योग व्यवसाय के मुकाबले में खेती की आर्थिक स्थिति बराबर गिरी हुई रहती है। इसका अर्थ यह है कि इस संसार की बड़ी-बड़ी मंडियों में अमेरिका के उद्योग व्यवसाय को बढ़ा-चढ़ा रखने के लिए वहां की खेती का बलिदान करना पड़ेगा।*

भारत में सिर पीछे जो एक एकड़ की खेती का औसत बैठता है उसमें भी छोटे-छोटे टुकड़े हैं और वे टुकड़े दूर-दूर पर हैं। अमेरिका में सैंकड़ों एकड़ की इकट्ठी खेती एक साथ है जिसकी जुताई बुवाई के लिए इकट्ठी मशीनों से काम लेने में किफायत होती है। यह बात तो प्रत्यक्ष है कि रोजगार का फैलाव जितने अधिक विस्तार का होगा उतनी ही अधिक लागत भी बैठेगी और उसी हिसाब से मुनाफा भी ज्यादा होगा। यूरोप के स्वतंत्र देशों में भी जिन देशों की आबादी घनी है और किसान को सिर पीछे खेती करने को कम जगह मिलती है वहां के किसानों ने भी अमेरिका के किसानों के मुकाबले कम उन्नति की है, यद्यपि न तो उनके यहां भारत की तरह औसत जोत इतनी कम है और न पराधीनता है और न उससे उपजी हुई घोर दरिद्रता।

इस बात को भी भूल जाना चाहिए कि अमेरिका आदि देशों के किसानों को लगान के बढ़ने या खेत से बेदखल हो जाने का उस तरह का डर नहीं है जिस तरह भारत में है। खेती की सुरक्षा तो भारत के मुकाबले उन

उपनिवेशों में ही अच्छी है जहां गिरमिटवाली गुलामी करने बहुत से भारतीय गये और सुभीता देखकर वहीं बस गये और खेती करने लगे । विदेशों की-सी सुरक्षा यहाँ भी हो जाय तो पैदावार बढ़ सकती है ।

अमेरिका में पहले आबादी भी थोड़ी थी और मशीनों की चाल भी नहीं चली थी, तब वे अफ्रीका के हवशियों को गुलाम बनाकर ले गये और काम लेने लगे । विस्तार से खेती का काम बिना कल के सहारे करने के लिए बहुत ज्यादा आदमियों की जरूरत होती है, इसलिए वहां मशीनों की चाल चल जाने से आदमियों की जरूरत घटती गई । पिछले साठ बरसों में से पहले तीस बरसों में अधिक काम मशीनों के प्रचार ने किया । यह प्रचार और शिक्षा का काम कृषि-विभाग करता रहा । विक्रमी की बीसवीं अर्ध-शताब्दी के बीतते-बीतते अमेरिकावालों का जो जोश ठंडा पड़ गया था वह धीरे-धीरे जगने लगा । पिछले तीन बरसों में यह जागृति जोरों से इसलिए हो गई कि कच्चे माल की दर बहुत जोरो से चढ़ने लगी और लोग खेती की ओर झुकने लगे, जिससे भय हुआ कि अन्न घट जायगा । तब फिर से कृषि महा-विद्यालय और कृषि विभाग की जांचवाले दफ्तर खुल गए । आवाज उठी कि वैज्ञानिक प्रयोग किसान तक जबरदस्ती पहुँचाये जाने चाहिए । खेती के विशेषज्ञ जिले के एजेंट और खेती के संवादपत्रों ने इस काम को उठा लिया । रेल की गाड़ियों में और मोटरों में सिखानेवाले और कर दिखाने-वाले बैठकर गांव-गांव का दौरा करने लगे । हर तरह की सरकारी सहायता बड़ी उदारता से मिलने लगी । क्यों न हो; अपने देश की खेती के बढ़ाने की बात जो थी । खेती की योग्यता के बढ़ाने के प्रश्न पर अमेरिका में मनुष्य का जितना दिमाग और जितनी ताकत पिछले १५ वर्षों में लगाई गई है, इतिहास में कहीं कभी नहीं लगाई गई थी* पंजाब के गुड़गांव के डिप्टी कमिश्नर मिस्टर ब्रेन ने थोड़ी बहुत उसी ढंग पर कोशिश की थी, परन्तु उन्हें सफलता न हो पाई । कौवा चला हंस की चाल, अपनी चाल भी भूल

* Farm Income and Farm Life : The University of Chicago Press 1927. P. 115.

गया। अमेरिका में जो काम होता है उसपर किसानों का पूरा विश्वास है। यहां सरकार में और किसान में भेड़िया और भेड़ का संबंध है। किसानों को सरकारी अफसरों का विश्वास नहीं है। जो कुछ ब्रेन साहब कर पाये, वह अफसरी के जोम पर। उनकी नीयत बड़ी अच्छी थी; परंतु वह सरकारपने का कलंक अपने व्यक्तित्व से मिटा न सकते थे। उन्होंने ज्यों ही पीठ फेरी, उनका सारा प्रभाव मिट गया और सुधार की दशा फिर ज्यों-की-त्यों हो गई। बात यह थी कि उनके अधिकार में मालगुजारी का बोझा घटाना नहीं था। वह बहुत कुछ शोरगुल करके रह गये, इसी-लिए अधिक-से-अधिक वह भी पैबंद लगाने का काम ही कर सकते थे और हम दिखा आये हैं कि जहां जड़ ही खराब है वहां पत्ते-पत्ते की सिचाई काम नहीं दे सकती। वह चाहते थे कि सरकार की ओर से माली सहायता मिले, मालगुजारी कम की जाय, जगल बढ़ाये जाय और किसानों का उन पर अधिकार रहे।* लाट साहब हेली ने उनकी पुस्तक की भूमिका लिखी; परन्तु व्यवहार में ब्रेन के दिमाग की अवहेलना की।

अमेरिका में जितने सुभीते हैं उतने सुभीते जिस देश में हो जायं उसी देश की खेती दिन पर दिन बढ़ती जा सकती है। अमेरिका के सुभीते संक्षेप में ये हैं—

(१) वह स्वाधीन राज्य है और वहां खेती से मिला हुआ कर देश के भीतर ही खर्च होता है।

(२) खेती पर किसान का सदैव का स्वार्थ है, उसे बेवखली का या इजाफा लगान का कोई भय नहीं है।

(३) थोड़े-से-थोड़े कर में उसे ज्यादा-से-ज्यादा रक्षा मिलती है।

(४) जीवन की जितनी जरूरी चीजें हैं वे उसके पास काफी से ज्यादा हैं।

(५) उसके पास रोजगार का काम लगातार साल भर के लिए है,

* F. L. Brayne, Village uplift in India, Pioneer Press Allahabad, 1927, PP. 64-66 & 71.

और वह अपने लिए काफी कमाई करके फुरसत की घड़ियों का सुख भी लेता है।

(६) सारे परिवार के लिए मन-बहलाव का उपाय है और मेहनत करने के बाद नित्य उसे मन-बहलाव का सुभीता मिलता है।

(७) खेती के संबंध की सब तरह की शिक्षा के सुभीते उसे मिलते हैं।

(८) सफाई, मकान और तंदुरुस्ती की रक्षा के सारे उत्तम उपाय उसे प्राप्त हैं।

(९) बाहर की आमद-रफ्त पत्र-व्यवहार और व्यापार के सब तरह के सुभीते उसे मिलते हैं।

(१०) जैसे उसका सारा देश स्वराज्य है उसी तरह उसका गांव या बस्ती उस महास्वराज्य का एक स्वाधीन टुकड़ा है।

(११) उसके केन्द्रीय स्वराज्य से उसकी बस्ती का संबंध उसकी बस्ती के सर्वथा हितकर है।

हमने जान-बूझ कर मशीन के सुभीते और इकट्ठी बड़े रकवे की खेती ये दोनों बातें शामिल नहीं कीं। हमारे देश में बड़े रकवे मिल नहीं सकते और जो लोग आजकल मशीनों के चमत्कार को देखकर उनपर हजार जान से फिदा हो रहे हैं हम उन्हें यह याद दिलाना चाहते हैं कि जो मशीन दो सौ आदमियों की जगह केवल एक आदमी को लगाकर काम कर सकती है वह एक सौ निन्यानवे आदमियों को बेकार भी रखती है। ऐसी मशीनों की जरूरत वहां पड़ सकती है जहां आदमी कम हों और काम ज्यादा हो। हमारे देश में इसका बिलकुल उल्टा है। आज तो हमारे यहां आदमी ज्यादा हैं और उनके लिए काफी मजदूरी नहीं है। इसके सिवा मशीनों का काम बड़े पैमानों पर नहीं हो सकता। इस रोजगार को बड़े पैमाने पर करने में भी भारत की जनता की हानि है। जिस तरह कपड़े का कारोबार बड़े पैमाने पर होने से भारत में बेकारी का रोग फैल गया, उसी तरह खेती का कारोबार भी बड़े पैमाने पर होने से बेकारी बढ़ती ही जायगी। यदि संपत्तिशास्त्र

को संसार के कल्याण की दृष्टि से देखें और परस्पर लूटनेवाली राष्ट्रीयता का दुर्भाव हटावें तो हमें यह कहना पड़ेगा कि कलों का प्रयोग वहाँ तक कल्याणकारी है, जहाँ तक वह अधिक-से-अधिक मनुष्यों को काम और दाम देकर अधिक-से-अधिक अच्छाई और मात्रा में माल तैयार कर सकें। हम ऊपर प्रमाण के साथ यह दिखा आये हैं, कि ऐसे उत्तम सुभीते के रहते भी किसानों की गिनती घटती जाती है और अधिक लोग संसार को लूटनेवाले उद्योग-व्यवसाय की ओर चले जा रहे हैं। मिल की माया से मोहित मनुष्य इस झूठी कल्पना में उलभे हुए हैं कि औद्योगिक लूट बराबर जारी रहेगी और लूटनेवाले संसारी जीव जगकर इस लूट का द्वार कभी बंद न कर सकेंगे; परन्तु यह भारी भ्रम बहुत काल तक न रह सकेगा।

फिर भी अमेरिका से हमको जो बातें सीखने लायक हैं हम जरूर सीख लेंगे। हम जितने सुभीते गिना आये हैं, भारत के लिए हम वे सभी सुभीते चाहते हैं।

वर्तमान समय में हम मोटरों पर चलनेवाले किसानों और मजूरों की तरह अपने यहां के किसानों और मजूरों को विमानों का भोग-विलास करते देखने की स्पर्धा नहीं रखते। “भोजन सादा हो परंतु भर पेट मिले और पशुओं और अतिथियों तक के खिलाने के लिए बच जाए। भरसक खेतों की ही उपज हो मोटा चाहे कितना ही हो और भांति-भांति का चाहे न भी मिल सके। खदर सस्ता हो जिससे शरीर की रक्षा हो सके और सर्दी से बचाव हो, चाहे महीन, मुलायम और सुन्दर न हों परंतु जरूरत से किसी तरह कम न हो। छाया के लिए मकानियत काफी हो, चाहे उसमें सजावट और सुघराई न हो तो भी सफाई पूरी तरह रह सके। बहुत थोड़े खर्च में शिक्षा मिले, पुस्तकें मिलें और सब तरह के मन बहलाव का सामान हो जाय। सामाजिक काम भी बिना बाधा के हो सकें। जोखिमों का बीमा भी होता रहे और घरती पर के जीवन के लिए और भी कुछ थोड़ी-बहुत बे-जरूरी बातें सुलभ हों। संसार के अधिकांश किसानों को इससे ज्यादा सुभीते नहीं हैं। अधिक लोगों को तो असल में इनसे

बहुत कम सुभीते हैं। यह एक बहुत दिनों से पक्की बात है कि पीढ़ियाँ-पर-पीढ़ियाँ गुजरती गई हैं और जीवन के इन परिणामों से संतुष्ट रहकर वे केवल किसान ही नहीं बने रहे बल्कि जितना हमें चाहिए था उतने से अधिक उपजाते रहे भी। इससे बढ़कर इस बात की कोई गवाही हो नहीं सकती कि जीवन के इससे अधिक परिणामों की असल में जरूरत न थी, या यों कहना चाहिए कि खेती की परिस्थिति में इससे ऊँचे परिमाण की रक्षा नहीं की जा सकती थी।^{*} हम उस सादगी को ज्यादा पसन्द करते हैं जिसमें कि ईमानदारी से रहकर किसान अपने आत्मिक जीवन की पूरी ऊँचाई तक उभर सके। वह विज्ञापनवाजी के फंदों में न फसे, सूचीपत्रों से अपने को न ठगावे, टगों की तस्वीरों और मोहिनी बातों पर लुभा न जाए। इश्तिहारी रोजगारों का शिकार न बने और विलासिता में न फंसे। अमेरिका के किसानों के ये थोड़े से दोष हैं जिनसे बचना होगा। दलाली, मुकदमेवाजी, जुआ, नशा, आलस्य, गुण्डापन, व्यभिचार आदि से, जो हमारे किसानों में दिन-पर-दिन बढ़ते चले जा रहे हैं, उनसे बचना होगा।

२. डेनमार्क की खेती

संसार में अमेरिका की खेती सबसे बड़ी-चढ़ी है, परंतु जैसा हम देख आये हैं यह उन्नति हाल की ही है। अमेरिका ने अपने कृषि-विभाग की जानकारी बढ़ाने के लिए कृषि-विज्ञान के बड़े-बड़े विद्वानों को यूरोप के भिन्न-भिन्न देशों में पर्यटन कराया। यूरोप में खेती के व्यवसाय में अमेरिका वालों ने डेनमार्क को सबसे अधिक बढ़ा-चढ़ा पाया और अनेक बातें इस छोटे से देश से सीखीं। यों कहना भी अनुचित न होगा कि जब हम डेनमार्क की चर्चा करते हैं तो असल में उस देश की चर्चा करते हैं जो अमेरिका के लिए भी आदर्श है। इस तरह समझना चाहिए कि संसार में खेती की उन्नति के लिए डेनमार्क ही सबसे उत्तम आदर्श है। यूरोप के 'लीग ऑफ नेशंस'

* Alexander E. Cance, Professor of Agricultural Economics Massachusetts Agricultural College, in "Farm Income and Farm Life," The University of Chicago Press, New York, 1927. P. 78.

(राष्ट्रसंघ) की ओर से (दी रूरल हाईजीन इंटरचेंज) कृषि-स्वास्थ्य—परस्पर-विनिमय विभाग ने स्वास्थ्य-संगठन पर कई उपयोगी पुस्तिकायें निकलवाई हैं। डेनी सरकार के खेती के विभाग के मंत्री श्री एस. सोरसेन ने डेनी खेती पर एक बड़ी अच्छी पुस्तिका लिखी है। उसकी भूमिका में डाक्टर बूद्रो ने लिखा है कि जहां की आर्थिक दशा बहुत अच्छी और पक्की नींव पर जमी हुई नहीं है वहाँ तंदुरुस्ती की रक्षा के लिए उपाय नहीं किये जा सकते। तात्पर्य यह है कि जिन राष्ट्रों को स्वास्थ्य-रक्षा पूरी तौर पर मंजूर हो वे अपनी आर्थिक दशा सुधारें और डेनमार्क की तरह खेती और किसानों की उन्नति करें। स्वास्थ्य-विभाग ने इसीलिए कृषि-विभाग संबंधी पुस्तिका छपवाई है। इस प्रसंग में हम यह कहे बिना नहीं रह सकते कि पिछले पृष्ठों में हमने जो दरिद्रता का संबंध रोगों और मौतों की बढ़ी हुई संख्या से दिखाया है, वह संसार में निर्विवाद बात मानी जाती है।

परन्तु डेनमार्क खेती में जितना ही बढ़ा-चढ़ा हुआ है, उतना ही विस्तार में छोटा है। यह समुद्र तट पर बसा हुआ केवल १६,५३६ वर्गमील का क्षेत्रफल रखता है। उसकी आबादी ३४,९७,००० प्राणियों की है। इस देश से क्षेत्रफल के हिसाब से भारत का अवध प्रांत ड्योढ़ा बड़ा है और पश्चिमोत्तर सीमाप्रांत बराबर है। भारत में इससे छोटे प्रांत दिल्ली और अजमेर के हैं। आबादी में सीमाप्रांत का ड्योढ़ा है, और सिंध प्रांत से कुछ कम है। अमेरिका के मुकाबिले में यहां की आबादी ज्यादा घनी है। ये अंक हमने संवत् १९८५ के दिये हैं। डेनमार्क में देहातों की आबादी सैंकड़ा पीछे ५७ है। इसमें से सभी खेती नहीं करते। खेती के संबंध के सारे काम करने वालों को गिनें तो किसानों की आबादी सैंकड़ा पीछे ३३ ही ठहरती है। इनमें से खेत के मालिकों के कब्जे में १,७७,००० खेत हैं। पट्टे पर २,२०७ हैं। लगान पर ८,५५१ हैं। इस तरह कुल खेती में ९४ प्रति सैंकड़ा लोगों की अपनी मिल्कियत है, बाकी ६ प्रति सैंकड़ा पट्टे या लगान पर हैं। छोटे-से-छोटे खेत आठ एकड़ तक के हैं, परन्तु सबसे बड़ी संख्या २५ एकड़वाले खेतों की है। उनके बाद ७५ एकड़वालों की संख्या लगभग उतनी ही है जितनी कि

आठ एकड़वालों की संख्या है। इस तरह असल में वहां थोक खेती ज्यादा है। किसानों की आबादी के हिसाब से जितने क्षेत्रफल पर किसान अधिकार रखता है वह हमारे यहां से कहीं ज्यादा है। सत्रह-सत्रह एकड़ की जोतें छोटी जोतों का औसत क्षेत्रफल समझी जाती हैं।* हमारे यहां जिनके पास १७ एकड़ खेत है वे १७ भिन्न-भिन्न जगहों में बंटे हुए भी हैं। थोक-के-थोक इकट्ठे नहीं हैं। संवत् १९७७-७८ और ७९ में वहां एकड़ पीछे लगभग १२०३ रुपये दाम देने पड़ते थे। जिन लोगों के पास छोटी-छोटी जोत थी उन्हें बढ़ाने के लिए और जिनके पास पट्टे थे या जो रय्यत की तरह लगान पर खेत लेकर खेती करते थे उन्हें खेतों को खरीद लेने में वहां की सरकार ने बहुत कम ब्याज पर और उन खेतों की ही जमानत पर उधार रुपये दिये और किसानों को खेतों का मालिक बनाया। यह उधार के रुपये भी वसूल करने का ढंग ऐसा अच्छा रक्खा कि छोटी-छोटी किस्तों पर साल-साल में किसान लोग अदा करें, जिसमें कई बरसों में वह सरकारी उधार भी चुकता हो जाय और किसानों की मिल्कियत भी पक्की पोढ़ी हो जाय। डेनी सरकार ने किसानों के साथ केवल इतनी रियायत ही न की बल्कि उनका संगठन कराने में, सहयोग समितियों के बनाने में उनकी उपज को अच्छी बनाने में और ससार की मंडियों में उनके माल के अच्छे से-अच्छे दाम खड़े कराने में पूरी मदद दी और कोई बात उठा न रखी।

बाहर के लोग यह देखकर आश्चर्य करते हैं कि डेनो के देश की समाई इतनी कम होने पर भी संसार की मंडियों से एक-तिहाई मक्खन, एक-चौथाई सूअर का मांस, और दसवां भाग अंडे वह कहां से लाकर बेचता है? श्री सोरंसेन इस रहस्य को थोड़े ही में खोल देते हैं। डेढ़ सौ बरस के संगठन और घनी खेती का यह फल है और इतना कह देने में जरा भी गलती का डर

*'Small Holdings in Denmark' by L. Th. Arnskov Danish Foreign office journal 1924. (Dyioa and jeppesen), Danish Agricultural (Statistic), The Agricultural Council of Denmark vestre Boulevard 4-Copenhagen V.

नहीं है कि डेनी किसान अपने काम में बड़े कुशल और शिक्षित हैं और उनका सामाजिक और मानसिक परिमाण बहुत ऊंचा है।

हमारा भी तो इन्हीं डेढ़ सौ बरसों का रोना है। जो देश स्वाधीन थे या स्वाधीन हो गए, जैसे डेनमार्क और अमेरिका, उन्होंने उसी समय अपना संगठन और उत्थान आरंभ किया; उसी समय भारत के पांवों में बेड़ियां पड़ गई, और उसके शरीर से रून चूस कर बाहर जानेवाली जोकें लग गई। डेनमार्क की उन्नति की बुनियाद भी बहुत पुरानी है। पुराने डेनमार्क में उस समय उसी तरह का ग्राम-संगठन था जैसा कि भारत में। हरेक गांव की एक प्रकार की सहयोगी समिति थी जिसमें गांव का हर आदमी शामिल था। वे अपना कानून खुद बनाते थे। उनकी कानून की किताब में खेती, पशु-पालन आदि के नियम लिखे रहते थे। गांववाले साल भर के लिए या तीन साल के लिए अपना मुखिया चुन लेते थे। गांव में हरी घास पर यही मुखिया सभा किया करता था। हर मेम्बर के बैठने के लिए उसकी जायदाद की हैसियत के अनुसार मंच हुआ करता था। मुखिया काम शुरू करता था और फिर ऐसी बातें तय कर ली जाती थी कि जोताई-बोवाई किस-किस दिन की जायगी, घास कब कटेगी, फसल कब काटी जायगी, कौन-कौन से दरख्त कटेगे और कब कटेंगे, ढोरों का क्या बन्दोबस्त होगा, ग्वाले को क्या दिया जायगा? इस तरह के छोटे-छोटे प्रश्नों से लेकर गांव के सब तरह के बन्दोबस्त इसी पंचायत में होते थे। दीवानी और फौजदारी दोनों तरह के मुकदमों के फैसले होते थे। जुर्माने होते थे और लिये जाते थे। ये पंचायतें बड़े अदब-कायदे से होती थीं। बड़े अनुशासन से काम लिया जाता था। पंचायती पाठशाला आदि पंचायत की चीजें थीं। किसी के लड़का हो या न हो, पर हर गांव वाला पढ़ानेवाले के भोजन के खर्च में हिस्सा देता था। इसके सिवा हर पढ़ने वाला लड़का फीस भी देता था, जिससे मास्टर की तनखाह निकलती थी। बहुत विस्तार करना व्यर्थ है, इतना कह देना काफी होगा कि हरेक गांव अपने-स्थानीय स्वराज्य का उपभोग करता था। परन्तु इसके साथ-साथ एक दोष यह था कि जमींदारी और काश्तकारी का भी संबंध था और मजूरों और

आसामियों के साथ गुलामों का-सा बर्ताव होता था। परन्तु इस प्रथा में धीरे-धीरे सुधार होने लगा और पिछले पचास वर्षों में सुधारों का वेग बहुत बढ़ता गया। जहां-जहां जमीन रेतीली थी और खेती नहीं हो सकती थी, वहां की जमीनों पर जंगल लगा दिये गए। जहां-जहां हो सका पशुओं का चारा उपजाया जाने लगा। घासों के उगने की जगह आलू, गाजर, शलगम आदि कद-मूल उपजाये जाने लगे। बाज-बाज फसलें पाँचवे, बाज छठवें और बाज सातवें साल अच्छी होती थीं। अदला-बदली करके इस तरह पर वहां खेती होने लगी कि जिस साल जिस चीज की उपज सबसे ज्यादा होनेवाली थी उस साल वही चीज बोई जाती थी। यह तो खेती की बात हुई, जिसमें कि उन्होंने ऐसी तरक्की की कि बढ़ते-बढ़ते एकड़ पीछे सोलह मन गेहूँ उपजाने लगे। डेनों का गाहक पहले इंग्लैंड था, परन्तु मंडी में और मुल्कों की चढ़ा-ऊपरी से डेनों की अनाज की खपत कम हो गई। उस समय डेन हताश नहीं हुए, वे गोवंश को पहले ही से सुधार रहे थे। जब अनाज की बिक्री कम हुई तो उन्होंने मक्खन का रोजगार करना शुरू किया, गाये पालीं और बछड़े भी पालने लगे। भारत में बैल बड़े काम के जानवर हैं, खेती उन्हीं के बैल पर होती है, परन्तु डेनमार्क में दुलाई और जुताई आदि का काम घोड़ों से लेते हैं; इसलिए गोमांस-भक्षी अंग्रेज ग्राहकों को वे बैलो का मांस देने लगे। मांस, चर्बी आदि के लिए वे पहले से सुअर भी पालते थे और अंडों के लिए मुर्गी, बतक आदि भी रखते थे। इस तरह उन्होंने अनाज की बिक्री घटने पर गोमांस, शूकर-मांस, चर्बी, चमड़ा, मक्खन, अंडे इत्यादि की बिक्री बढ़ाई। इस बात में डेनी सरकार से उन्हें बहुत बड़ी मदद मिली। आज सिवाय अनाज के इन सब चीजों की बिक्री डेनमार्क की बहुत ज्यादा है। और वे सब चीजे खेती की उपज समझी जाती हैं। भारतवर्ष शायद ऐसी खूखार तिजारत के लिए ठीक न होगा, परन्तु हमारे देश की शिक्षा के लिए वहां की सब से बड़ी चीजें दो हैं—एक तो सहयोग समितियां और दूसरे खेती की शिक्षा देनेवाले मदरसे।

सहयोग-समितियों की चर्चा भारतवर्ष में बहुत चल रही है। उसके कानून भी बने हुए हैं। देश में गवर्नमेंट की ओर से उसका आन्दोलन चल

रहा है। परन्तु हमारे देश में और डेनमार्क में यह भारी अन्तर है कि डेनों की सहयोग-समितियां गांव की पंचायतों से पैदा हुई हैं और वहां की सरकार ने उन्हें अपना लिया है। यहां की सरकार ने पहले गांव की पंचायतों को नष्ट कर डाला, जिसको बहुत जल्दी सौ बरस के लगभग हो जायेंगे और कोई छब्बीस बरस हुए कि विदेशी सरकार ने सहयोग-समितियों की बुनियाद डाली और उन्हें अपने जोर से फैलाया, परन्तु उनमें इतने बंदेज रखे कि हमारे गरीब किसान उनको अपना न पाये। वहां सहयोग-समितियों की बुनियाद नीचे से पड़ी थी, और यहाँ शिमले की ऊंचाई से। यह साफ है कि कौन-सी बुनियाद मजबूत हो सकती है। वहां के किसानों ने सब तरह की समितियां बनाई हैं, जिनका आरम्भ पहले-पहल 'मक्खन निकालने वाली समिति' से हुआ। सन् १९३६ में कुछ दरिद्र किसानों ने मिलकर मक्खन निकालने के लिए पहले-पहल समिति बनाई। वहाँ आजकल ऐसी चौदहसौ समितियां हैं। इनके सिवा खरीदने की, बेचने की लेन-देन की, सब तरह की सहयोग-समितियां बन गई हैं। इन पर सरकारी नियंत्रण नहीं है परन्तु सरकार में इनकी साख मानी जाती है, इनको उधार रुपये दिये जाते हैं, इनके विरुद्ध सरकारी अदालतों में मुकदमे नहीं चलाये जा सकते।

डेनमार्क की सारी उन्नति की पूजा वहां की 'लोक-पाठशालाओं' में है। पादरी ग्रुंट फिगने ६० बरस से ऊपर हुए इन पाठशालाओं का आरंभ किया था। उसने एक बार इस प्रकार अपनी इच्छा प्रकट की थी—“यह मेरी परम अभिलाषा है कि डेनों के लिए ऐसी पाठशालाएं खुलें जिनमें देश के युवक पढ़ सकें। वहां वे मानव-स्वभाव और मानव-जीवन से अच्छा परिचय पा सकें और विशेषकर अपने को खूब समझ सकें। वे गांवों में रहनेवाले के कर्तव्य और संबंध अच्छी तरह समझ सकें और देश की जरूरतें भी अच्छी तरह जानें। मातृ-भाषा की गोद में उनकी देशभक्ति पलेगी और डेनी गीतों में उनके राष्ट्र का इतिहास पुष्ट होगा।

हमारे लोगों को सुखी बनाने के लिए ऐसे मदरसे अमृत के कुंड होंगे ।’*

सचमुच इसी अमृत-कुंड से डेनी किसानों का नया जीवन निकला । वहां ऐसे साठ मदरसे हैं, जिनमें लगभग सात हजार शिक्षार्थी हैं । ये १८ बरस से लेकर २५ बरस तक के युवक और युवतियां हैं । पांच महीने में युवकों की पढ़ाई समाप्त होती है और तीन महीनों में युवतियों की । ये लोग प्रायः थोड़े लिखे-पढ़े मदरसों में भरती होते हैं, और खेती की ऊंची-से-ऊंची विद्या इस थोड़े काल में पढ़कर पंडित हो जाते हैं ।

संक्षेप से डेनमार्क में भी हम वही सब सुभीते पाते हैं जिन ११ सुभीतों की चर्चा हम अमेरिका के संबंध में कर आये हैं । यहां दोहराने की जरूरत नहीं है । अमेरिका से फर्क इतना ही है कि अमेरिका की अनाज और फल की खेती बड़ी हुई है और डेनी लोग पशु की खेती में बढ़े-चढ़े हैं । अमेरिका में खेतों का विस्तार सिर पीछे डेनमार्क की अपेक्षा बहुत ज्यादा है । इन दोनों देशों में बैलों से काम नहीं लिया जाता, बल्कि लोग उन्हें खा जाते हैं; हा, वे गऊ के पालने में बड़े होशियार हैं और दूध, मक्खन की भारी तिजारत करते हैं ।

संसार के सबसे बड़े खेती करनेवाले देशों में जो बातें हम देखते हैं उनमें सीखने की बातें लोहे की मशीन नहीं है बल्कि मनुष्यों के संगठन और प्रबन्ध हैं जो हम भी कर सकते हैं अगर हमारे हाथ-पांव खुले हों ।



* Quoted from S. Sorensen : Danish Agriculture, League of Nations, 1929. P. 26-27

ग्रामोपयोगी साहित्य

१. हमारे गांवों की कहानी (स्व० रामदास गौड़) २)
ग्राम-सेवकों का मार्ग-दर्शन कराने वाला मूल्य पुस्तक ।
२. पशुओं का इलाज (परमेश्वरीप्रसाद गुप्त) III)
पशुओं की बीमारियों का निदान व सरल इलाज ।
३. साग-भाजी की खेती (डा० नारायण दुलीचन्द व्यास) ३II)
इस पुस्तक में साग-भाजी की खेती में दिलचस्पी रखने वालों, विशेषतः किसानों को अनुभवी लेखक से उपयोगी जानकारी मिलेगी ।
४. फलों की खेती और व्यवसाय (डा० नारायण दुलीचन्द व्यास) ३)
फलों की खेती और व्यवसाय के संबंध में विषय जानकारी तथा ज्ञान देनेवाली सुबोध पोथी ।
५. ग्राम-सुधार (ओमप्रकाश त्रिख्वा) १I)
ग्राम-सुधार की शिक्षा तथा ज्ञान देनेवाली उपयोगी पोथी ।
६. चारादाना (परमेश्वरीप्रसाद गुप्त) I)
पशुपालन व उनको स्वस्थ रखनेवाले चारे का वर्णन किया गया है ।
७. चारादाना-चार्ट (परमेश्वरीप्रसाद गुप्त) I =)
इस नक्शे से चारा व उसकी उपयोगिता की जानकारी एक नजर में मिल जाती है । किसानों और ग्राम-सेवकों के लिए अनिवार्य वस्तु है ।
८. खादी द्वारा ग्राम-विकास (प्रभुदास गांधी) III)
ग्राम के विकास में खादी की सर्वांगीण उपयोगिता बताने वाली पोथी ।



सस्ता साहित्य-मंडल, नई दिल्ली ।

